काव्याकलन

गंगाप्रसाद पाण्डेय एम० ए०

प्रकाशक.

प्रयाग-महिला-विद्यापीठ प्रयाग

१९४३

प्रकाशक : प्रयाग-महिला-विद्यापीठ, प्रयाग ।

प्रथम बार १०००

मूल्य १॥)

मुद्रक : गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग ।

विषय-सूची

अपभ्रंश

हिन्दी भाषा हिमालय तथा विन्ध्याचल पर्वत-मालाओं के बीच बोली जाती है। आज-कल जिस बोली को पढ़ा-लिखा सुसंस्कृत सम काम में लाता है और जिसमें आज का अधिकांश हिन्दी साहित्य लि जाता है, वह खड़ी बोली के नाम से प्रख्यात है। हिन्दी की अन्य शाख उर्दू, राजस्थानी, ब्रज, अवधी, बिहारी तथा पहाड़ी हैं, जिनमें राजस्था ब्रज तथा अवधी साहित्य की दृष्टि से विशेष महत्व पूर्ण हैं। उर्दू हि को छोड़कर अरबी-फ़ारसी से अपना सम्बन्ध स्थापित करना चाहती

राजस्थानी भाषा राजस्थान तथा मालवा में बोली जाती है, इस प्राचीन साहित्य बहुत विस्तृत एवं महत्वपूर्ण है। चन्द और मीरा इस भाषा के प्रमुख कवि हैं। कबीर की भाषा में भी इस भाषा के ब से शब्दों का प्रयोग पाया जाता है। राजस्थानी का साहित्य विशेषत वीर रस एवं भक्ति प्रवृत्ति का भांडार है। 'राजस्थानी साहित्य की र रेखा' इस विषय की उत्तम पुस्तक है।

ब्रज भाषा मथुरा एवं आगरा के आस-पास के प्रान्तों में बोली जा है। इसका प्राचीन साहित्य बहुत ही व्यापक और वैभवपूर्ण है। हि के प्रायः सभी वैष्णव कवियों ने इसे अपनाया है, इस कारण इस प्रचार देश-व्यापी सा हो गया है। सूरदास, नन्ददास, देव, बिहारी त पद्माकर आदि महाकवियों ने इसे अपनी काव्य-भाषा बनाकर इ महत्व को बहुत ऊँचा कर दिया है। तुलसी की, मानस छोड़कर स

रचनाएँ इसी भाषा हैं। आधुनिक काल में भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रीधर पाठक तथा रत्नाकर ने व्रजभाषा में में अच्छी कविताएँ लिखी हैं।

अवधी भाषा का क्षेत्र अवध प्रान्त है। कबीर की भाषा में अवधी का बहुत मेल है। जायसी ने अपना पद्मावत इसी भाषा में लिखा है, इसकी भाषा ठेठ अवधी है। तुलसी का रामचरितमानस भी अवधी में है। इस भाषा के तुलसी सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, उनकी भाषा साहित्यिक अवधी है।

खड़ी बोली हिन्दी की प्रमुख शाखा है, यह भाषा मेरठ एवं दिल्ली के आस-पास बोली जाती है, किन्तु प्रधानतः यह साहित्यिक व्यवहार की भाषा है। समस्त उत्तर भारत में इसका प्रयोग किया जाता है। भारत की यही राष्ट्रभाषा है। मुसलमानों ने दिल्ली पर अधिकार प्राप्त करने के बाद इस भाषा को अपनाया और उनके राज्य-विस्तार के साथ-साथ यह सारे देश में फैल गई। मुसलमान कवियों ने इस भाषा में कविताएँ भी लिखी हैं। १८वीं सदी में खड़ी बोली की कविता मिलती है। १६वीं शताब्दी में खड़ी बोली के गद्य का प्रचार तथा प्रसार हुआ। अँग्रेजों ने भी देशवासियों के साथ व्यवहार के लिये इस भाषा को अपनाया, क्योंकि इसका प्रचार थोड़ा बहुत सारे देश में था। २०वीं सदी में भारतेन्दु के उदय से हिन्दी में एक युग-परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। उन्होंने गद्य-पद्य दोनों की अनेक पुस्तकें लिखकर भाषा का एक निश्चित स्वरूप उपस्थित कर दिया, अतः खड़ी बोली गद्य की एकमात्र भाषा हो गई। बाद में प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त तथा आचार्य द्विवेदी जी ने इसकी बड़ी उन्नति की। सारे देश में यही साहि-

त्यिक भाषा मान ली गई किन्तु पद्य में अभी लोग व्रज भाषा की ही महत्ता मानते आ रहे थे। आचार्य द्विवेदी, नाथूराम शर्मा, श्रीधर पाठक तथा अयोध्यासिंह आदि ने सफलता तथा कुशलतापूर्वक कविता लिखकर इसे काव्य की भाषा बनाने में भी सहायक हुए। मैथिलीशरण गुप्त अपनी 'भारत-भारती' की गूँज से इसे सर्वप्रिय बनाने में सफल हुए। आधुनिकतम कवियों ने इसकी कर्कशता का परिमार्जन किया और उसे एक सहज-सुन्दर तथा सुकोमल काव्य-भाषा का स्वरूप दिया। प्रसाद, पन्त, निराला का इस विषय में साहित्य चिर ऋणी रहेगा। आज गद्य तथा पद्य दोनों में खड़ी बोली की मान्यता सर्वमान्य है।

अपभ्रंश के बाद हिन्दी भाषा का उत्पत्तिकाल सम्वत् ११०० के लगभग माना जाता है, इस प्रकार इस भाषा के चार विकास काल माने जाते हैं।

आदिकाल या वीरगाथा-युग सम्वत् ११०० से १४०० तक
पूर्व मध्यकाल या भक्ति-युग सम्वत् १४०० से १६०० तक
उत्तर मध्यकाल या रीतियुग सम्वत् १६०० से १६०० तक
आधुनिककाल या गद्ययुग सम्वत् १६०० से अब तक

आदिकाल में हिन्दी का प्रारम्भ हुआ। इस काल में इस भाषा में अपभ्रंश तथा राजस्थानी भाषा के शब्दों का बहुत मेल पाया जाता है, इस समय का साहित्य वीर-रस प्रधान है। राजाश्रित कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के शौर्य्य, पराक्रम तथा प्रताप के वर्णन में वीर रस का उपयोग किया था क्योंकि उनका कार्य अपनी ओजपूर्ण वीरोचित कविताओं से अपने स्वामियों को उत्साहित करना था। उस समय भारत

में उत्तर-पश्चिम की ओर से मुसलमानों के आक्रमण होते थे और वहाँ के नरेशों को उनसे लड़ना पड़ता था। वह समय युद्ध का, वीरता प्रदर्शन का तथा साहस का था, अस्तु साहित्य का सृजन भी इसी के अनुकूल हुआ। चारण-कवि अपने आश्रयदाताओं की वीरता का बखान करते और उनके साथ लड़ते भी थे। ये कवि अपनी कृतियाँ अपने वंशजों को उत्तराधिकार के स्वरूप सौंप जाते थे, इसी परम्परा का प्रतीक हमारे साहित्य का आदिकाल है। साहित्य के विषय के अनुरूप उसका नाम 'वीरगाथा-युग' रखा गया है।

महाराज हम्मीर के समय के पश्चात् भारत में मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो गया और हिन्दू राजाओं को न तो आपस में लड़ने का उत्साह रह गया न मुसलमानों से ही लड़ने का संगठन। जनता की भावधारा बदलने लगी क्योंकि मुसलमानों के जमने तक उन्हें हटाकर अपने राज्य तथा धर्म की रक्षा का प्रयत्न करना ठीक भी था किन्तु मुसलमानों के साम्राज्य-स्थापन के पश्चात् धर्म के उस व्यापक रूप की ओर उसका ध्यान गया जो व्यक्ति की साधना तथा हृदय-ग्राहिता की शक्ति पर निर्भर है। ऐसा होना स्वाभाविक है। हिन्दुओं की सारी आशायें मिट्टी में मिल चुकी थीं, उनके हृदय में गौरव, गर्व और प्रताप के गीत सुनने का साहस नहीं रह गया था। आपस में लड़नेवाले स्वतंत्र राज्यों का भी पतन हो चुका था। विपत्ति तथा पराजय की इस सीमा पर पहुँच कर कोई भी जाति परमात्मा की ओर उन्मुख होती है, क्योंकि कष्टों से रक्षा पाने की वहाँ आशा रहती है। यही परमात्मा की अनन्त करुणा तथा शक्ति का परिचय भी तो है। यही हिन्दू-जनता ने भी किया, परन्तु

उनके सामने ही उनकी देव-मूर्तियाँ तोड़ी गईं, मन्दिर गिराये गये और परमात्मा ने उनकी कोई सहायता न की। इस स्थिति में मूर्तिमान परमात्मा की भी उपेक्षा होना असम्भव नहीं होता। कबीर के जन्म के समय हिन्दू-जनता की यही स्थिति थी, अनीश्वरवाद का ज़ोर बढ़ने ही वाला था कि इन संतों ने आकर सँभाला। स्मरण रखना चाहिये कि सब प्रकार की भक्ति तथा विश्वास के लिये जनता प्रस्तुत नहीं थी इसीसे कबीर ने परिस्थिति के अनुकूल निराकार तथा निर्गुण ब्रह्म की उपासना की ओर लोगों को प्रेरित किया। मुसलमान भी निर्गुणोपासक थे सब को मिलाकर इन संतों ने भारतीय जनता को संतोष और शान्ति देने का प्रयास किया, यही इनकी सब से बड़ी सफलता है। यद्यपि इस उद्योग में उन्हें पूरी सफलता नहीं मिली, तथापि उन्होंने सूर और तुलसी की सगुणोपासना का मार्ग सुगम कर दिया और भारत के भावी जीवन की झाँकी स्पष्ट कर दी। कबीर की परोक्ष सत्ता की एकता को जायसी ने व्यावहारिक योग दिया और सूर तथा तुलसी ने उसकी व्यापकता सर्वमान्य कर दी। इन कवियों तथा तत्कालीन धर्माचार्यों के भावों के अनुसार उस युग का नाम 'भक्ति-युग' पड़ा। सूर और तुलसी के काव्य का धर्म और साहित्य दोनों में समान सम्मान है। हिन्दी साहित्य को विश्व-साहित्य में गौरवान्वित स्थान दिलाने का श्रेय इसी युग के कवियों को है। यही साहित्य का स्वर्ण-युग माना जाता है। इस काल के हिन्दी काव्य को चार प्रधान धाराओं में विभाजित किया जा सकता है—

(१) संत काव्य-धारा (२) सूफ़ी काव्य-धारा (३) कृष्ण काव्य-धारा (४) राम काव्य-धारा। क्रम से कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा इन

धाराओं के प्रमुख तथा सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इन भक्त कवियों ने प्रेम तथा माधुर्य का जो स्रोत हमारे साहित्य में बहाया है वह युग-युगों तक प्रवाहित रहेगा, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। जनता के बीच शुद्ध, सात्विक आस्था की अवतारणा इनकी सब से बड़ी विशेषता की। लोक-रंजन तथा व्यक्ति-साधना का यह समुचित प्रकाश कभी क्षीण नहीं पड़ सकता।

भक्तियुग में जब हिन्दी काव्य अपनी पूर्ण पौढ़ता को पहुँच चुका था तब कुछ लोगों का ध्यान रस निरूपण तथा अलंकार निरूपण की ओर गया। महाकवि केशव ने काव्य के सब अंगों का निरूपण शास्त्रीय पद्धति से किया। काव्य-रीति का सम्यक् समावेश आचार्य केशव का ही काम था। चिंतामणि त्रिपाठी से रीतिग्रन्थों की परम्परा चल पड़ी। गद्य के विकास के बिना इन विवेचनाओं की विशद तथा विस्तृत व्याख्या नहीं हो सकी, किन्तु फिर भी काव्यालोचन की प्रणाली का सूत्रपात अवश्य हो गया। रीति-ग्रन्थों की इस परम्परा के द्वारा साहित्यिक विकास में भी बाधा पड़ी, क्योंकि जीवन तथा जगत् की अनेकरूपता पर इससे व्याघात पहुँचा। कवि की दृष्टि सीमित और बद्ध सी हो गई। स्मरण रखना चाहिये कि इस युग के कवियों के भाव, छन्द तथा विषय सभी नियमित तथा निश्चित से थे। शृंगार रस की प्रधानता इस युग की विशेषता है, यह शृंगार कहीं-कहीं बहुत अश्लील तक हो गया है। चिंतामणि, बिहारी, मतिराम, देव तथा दास इस काल के रीति-कवि हैं। कवियों की इस रीति-परंपरा की रुचि के कारण इस युग का नाम भी 'रीतियुग' पड़ा। इस युग में कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होंने इस

परम्परा के बाहर काव्य-रचना की है, कुछ ने प्रबन्ध-काव्य लिखे हैं, इ
ने नीति या भक्ति सम्बन्धी रचनायें की है, कुछ ने शृंगार रस की फुटक
कविताएँ लिखी हैं। रसखान, घनानन्द, वृन्द तथा आलम इन कवि
में उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक काल गद्य-प्रधान युग है, किन्तु इसका यह आशय न
कि पद्य का अभाव है। इस काल के पहले जो थोड़ी बहुत गद्य रचन
मिलती भी थीं वे सब ब्रजभाषा में थीं। हठयोग, ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी
गोरखपंथी ग्रन्थ मिले हैं। गद्य की भी एक पुस्तक है जो ब्रजभाषा
है। इसके पश्चात् कृष्णभक्ति-शाखा के भीतर गद्य ग्रन्थ मिलते हैं
सूरत मिश्र ने बैताल पचीसी संस्कृत से कथा लेकर सम्वत् १७६७
लिखी जिसको आगे चलकर लल्लूलाल ने खड़ी बोली हिन्दुस्तानी
किया। इस प्रकार क्रमशः विकास होते-होते १९वीं सदी तक में ख
बोली गद्य की भाषा बन गई किन्तु हमारा उद्देश्य यहाँ कवि-परिच
से अधिक है।

भारतेन्दु ने हमारी भाषा और भावनाओं दोनों का नवीन संस्क
किया और उसके परिणामस्वरूप खड़ी बोली एक व्यवस्थित गद्य-प
की साहित्यिक भाषा बन गई। गद्य के इस विकास में काव्य की भ
तथा रीति परम्परा भी चली आ रही थी। भारतेन्दु ने इसे भी मोड़
का प्रयत्न किया था और इसमें स्वदेश का स्वर-संधान उनकी सब
बड़ी देन है, किन्तु उन्होंने गद्य को जिस उत्साह के साथ नये विषय
की ओर अग्रसर किया पद्य को नहीं कर सके क्योंकि स्वयं उनक
कविताएँ कृष्ण-भक्ति की परम्परा की हैं। हरिश्चन्द्र के घनिष्ठ त

पन्त भाषा की चित्रोपम साकारता और सुन्दरता में तथा महादेवी भावनाओं के परिष्करण और काव्य में करुणा की सरस कोमल अवतारणा में अद्वितीय हैं।

इस उपर्युक्त विवेचनात्मक अध्ययन से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि जीवन और जगत की परिस्थिति के साथ-साथ मनुष्य के भावों तथा विचारों में भी परिवर्तन होता चलता है, किन्तु साहित्य की तो सब से बड़ी परिभाषा सभी प्रकार की कल्याणकारी सचेतन भावनाओं की रंगस्थली है। हम्मीर के पीछे भी वीर काव्य की रचनायें हुई हैं, सूर, तुलसी के बाद भी भक्तिपूर्ण कविताएँ कवियों ने की हैं, रीतिकाल के भीतर भी उस परम्परा के बाहर की प्रवृत्ति यथा, नीति, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि की काव्य-प्रेरणा चलती रही है और आज भी किसी एक विशेष पद्धति तथा नियम-बन्धन की स्वीकृति काव्य-क्षेत्र में नहीं है। हमारे साहित्य के इतिहास की यह बहुत बड़ी विशेषता रही है कि एक काल विशेष में जो काव्य-धारा प्रवाहित हुई, वह यद्यपि कुछ समय के पश्चात् क्षीण अवश्य पड़ गई जो स्वाभाविक है किन्तु इस हजार वर्ष के इतिहास में वह सर्वथा कभी नहीं सूखी और शायद भविष्य में भी न सूखेगी क्योंकि आज भी लोग वीरकाव्य उसी उत्साह से लिखते हैं। इसी प्रकार अन्य प्रवृत्तियों को भी बराबर काव्य-ममता मिलती रहती है।

कबीर

जीवन-वृत्त—[अब तक के अनुसन्धानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कबीर किसी हिन्दू स्त्री से उत्पन्न तथा नीरू नाम के मुसलमान जुलाहे के घर में लालित-पालित हुए थे। उन्होंने लोई नाम की स्त्री से विवाह किया था तथा इनके पुत्र का नाम कमाल और पुत्री का नाम कमाली था। सुप्रसिद्ध स्वामी रामानन्द इनके धर्म गुरु माने जाते हैं। कबीर का जन्म सं० १४५६ में और मृत्यु सं० १५७५ में हुई।]

महात्मा रामानन्द ने भक्ति को सामान्य व्यापकता देकर उसके प्रचार में पर्याप्त सहायता पहुँचाई। जाति-पाँति का भेद मिटाकर उन्होंने जनता की भाषा में अपने उपदेश दिये। यह हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि का एक विशेष कारण हुआ। रामानन्द की शिष्य-परम्परा में ज्ञानाश्रयी निर्गुणवादी कबीर का स्थान बहुत ऊँचा है। इनकी प्रेरणा से हिन्दी में ज्ञानाश्रयी भक्त कवियों की एक शाखा ही चल पड़ी। ये संत सभी जातियों के थे, इनके उपदेशों में, जाति-पाँति और ऊँच-नीच का भेद-भाव मिटाकर—'हरि का भजे सो हरि का होई' के उदार आधार पर मनुष्य मात्र की एकता स्थापित करने का प्रयास है। कबीर ने परोक्ष सत्ता की व्यापक एकता और लौकिक जीवन की सरलता का जनता में उन्मेष किया जिससे परमात्मा की एकता के साथ मानवों की एकता का भी प्रतिपादन हुआ। कबीर ने केवल वर्ण-भेद को ही नहीं वर्ग-भेद को भी दूर करने का प्रयत्न किया। सरल तथा सदाचारपूर्ण जीवन का

स्वयं अनुसरण करके इन कवियों ने अपने उपदेशों और वचनों की प्रभावोत्पादकता इतनी वढ़ा दी कि उस समय का वढ़ा-चढ़ा सामाजिक दंभ फीका पड़ गया। कवीर की उपासना निराकारोपासना थी। उनके काव्य में उपास्य के प्रति जो शब्द-संकेत मिलते हैं वे स्वभावतः रहस्यात्मक हैं। उपासना का आधार व्यक्त होने से उसके प्रति कहे शब्द भी सहज स्पष्ट होते हैं, किन्तु जब अव्यक्त की उपासना होती है तब रूपकमय रहस्यात्मक शैली का आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है।

काव्य में रहस्यवाद की उद्भावना का यही मूल कारण है। कवीर हिन्दी के सर्वप्रथम रहस्यवादी कवि हैं। वे वहुश्रुत थे। उन्होंने वहुत दूर-दूर तक देशाटन किया, हठयोगियों तथा सूफ़ी मुसलमान फक़ीरों का सत्संग किया, कवीर ने ब्रह्म को, जो हिन्दू-विचार-पद्धति में ज्ञान-मार्ग का निरूपण था सूफ़ियों के अनुसार उपासना का ही नहीं प्रेम का भी विषय वताया और उसकी प्राप्ति के लिये हठयोगियों की साधना भी स्वीकार की। उनकी युक्तियों में कलावाजी उतनी नहीं जितनी तथ्य-निरूपण की प्रेरणा। उनकी भाषा खिचड़ी है, क्योंकि वे पढ़े-लिखे नहीं थे इसी से उनपर सभी तरह के वाहरी प्रभाव पड़े और उन सव का सुन्दर समन्वय उन्होंने अपने काव्य में किया और कहा भी है—'सो ज्ञानी जो आप विचारै।' निर्गुण संत कवियों में कवीर प्रतिभा, प्रचार और कवित्व की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं। उनकी वाणी का संग्रह वीजक के नाम से विख्यात है। इसके तीन भाग किये गये हैं—रमैनी, सवद और साखी। इनकी कविता में मानव मात्र को स्पर्श करनेवाली, मानव मात्र से सहानुभूति रखनेवाली और सामाजिक संकीर्णता के प्रभाव से परे उदार भावनाओं का

प्राणमय प्रतिपादन है। इस काव्य से व्यक्तिरंजन के साथ-साथ लोक रंजन भी हुआ। कबीर के पीछे के संतों ने अधिकतर इन्हीं का अनुसरण किया। कबीर-पंथ में हिन्दू-मुसलमान दोनों हैं, यही उसकी सफलता का सबल प्रमाण है।

सुधारवाद

संतो देखत जग बौराना।
साँच कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।
नेमी देखा धर्मी देखा, प्रात करै असनाना।
आतम मारि पखानहि पूजै, उनमें कछु नहिं ज्ञाना॥
बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़ै किताब कुराना।
कै मुरीद तदबीर बतावैं, उनमें उहै जो ज्ञाना॥
आसन मार डिंभ धर बैठे, मन में बहुत गुमाना।
पीतर पाथर पूजन लागे, तीरथ गर्भ भुलाना॥
टोपी पहिरे माला पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।
साखी सब्दहि गावत भूले, आतम खबरि न जाना॥
हिन्दू कहै मोहि राम पियारा, तुर्क कहै रहिमाना।
आपस में दोऊ लरि मूये, मर्म न काहू जाना॥
घर घर मंतर देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना।
गुरु के सहित सिख्य सब बूड़ें, अन्तकाल पछिताना॥
कहै कबीर सुनो हो संतो, ई सब गर्भ भुलाना।
केतिक कहौं कहा नहिं मानै, सहजै सहज समाना॥

रहस्यवाद

१

प्रीति लगी तुम नाम की, पल बिसरै नाहीं।
नजर करो अब मिहर की, मोहिं मिलौ गुसाईं॥
बिरह सतावै मोहिं को, जिव तड़पै मेरा।
तुम देखन की चाव है, प्रभु मिलौ सवेरा॥
नैना तरसै दरस को, पल पलक न लागै।
दर्दवंद दीदार का, निसि बासर जागै॥
जो अब की प्रीतम मिलैं, करूँ निमिख न न्यारा।
अब कबीर गुरु पाइया, मिला प्रान पियारा॥१॥

२

रस गगन-गुफा में अजर झरै।
बिना बाजा झनकार उठे जहँ, समुझि परै तब ध्यान धरै॥
बिना ताल जहँ कँवल फुलाने, तेहि चढ़ि हंसा केल करै।
बिन चंदा उजियारी दरसै, जहँ तहँ हंसा नजर परै॥
दसवें द्वारे तारी लागी, अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।
काल कराल निकट नहिं आवै, काम क्रोध मद लोभ जरै॥
जुगन जुगन की तृखा बुझानी, करम भरम अघ व्याधि टरै।
कहै कबीर सुनो भई साधो, अमर होइ कबहूँ न मरै॥२॥

विविध

जा कारन जग ढूँढिया, सो तो घट ही माहिं।
परदा दीया भरम का, ताते सूझै नाहिं॥
आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह॥
लाली मेरे लाल की जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी ह्वै गई लाल॥
साधू ऐसा चाहिये जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै थोथा देइ उड़ाय॥
वृक्ष कबहु नहिं फल भखै नदी न संचय नीर।
परमारथ के कारणे साधुन धरा सरीर॥
तरुवर तासु बिलम्बिये बारह मास फलंत।
सीतल छाया गहर फल पंछी केलि करंत॥
विरह कमंडल कर लिये बैरागी दो नैन।
माँगै दरस मधूकरी छके रहैं दिन रैन॥
सब रग ताँत रबाब तन विरह बजावै नित्त।
और न कोई सुनि सकै कै साईं कै चित्त॥
जिन ढूँढा तिन पाँइया गहरे पानी पैठि।
हौं बौरी डूबन डरी रही किनारे बैठि॥
माला फेरत जग मुआ फिरा न मन का फेर।
करका मनका डारि दे मन का मनका फेर॥

कथनी मीठी खाँड सी करनी बिस की लोय।
कथनी तज करनी करै बिस सों अमृत होय॥

सेमर सुअना सेइया द्वै ढेढ़ी की आस।
ढेढ़ी फूटि चटाक दै सुअना चला निरास॥

काल करै सो आज कर आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी बहुरि करौगे कब्ब॥

मलिक मुहम्मद जायसी

जीवन-वृत्त—[जायसी की पुस्तक 'आखिरी कलाम' से पता चलता है कि उनका जन्म १४९२ के लगभग हुआ। 'पद्मावत' का प्रारम्भ सन् १५२० में हुआ किन्तु उसकी समाप्ति १९, २० वर्ष बाद हुई। जायसी, जायस में गृहस्थ की भाँति रहते थे। वे ईश्वर भक्त और बड़े साधु प्रकृति के थे, किन्तु उनकी शारीरिक कुरूपता भी अद्भुत थी। अमेठी के राजा रामसिंह उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे, अमेठी से कुछ दूर घने जंगल में उनकी मृत्यु सन् १५४२ के लगभग हुई।]

कबीर आदि संत कवियों की परोक्ष सत्ता की एकता-स्थापन के पश्चात् कवियों का एक ऐसा समुदाय उदय हुआ जिसने जीवन की व्यवहारिक एकता की ओर अधिक ध्यान दिया। यह दल भावुक सूफी कवियों का था, जो प्रेम-पंथ को लेकर चला। उत्कट प्रेम तथा उदार हृदय के कारण सूफियों का उपास्य अव्यक्त निराकार बहुत कुछ व्यक्त रूप धारण कर लेता है, क्योंकि उनका परमात्मा निर्गुण होते हुए भी अनंत प्रेम का भंडार है, अतः उसके प्रेम की अभिव्यक्ति उन्हें लौकिक आख्यानों के द्वारा करनी पड़ी। कबीर की वाणी अटपटी थी, उपासना निराकार। वेद, पुराण और कुरान की उन्होंने निंदा भी की थी। इसके विपरीत सूफी, कवियों के उद्गार अधिकतर श्रृंखलित और शास्त्रानुमोदित थे, भाषा भी सुन्दर और परिष्कृत। चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य और रामानन्द के प्रभाव से प्रेम-प्रधान वैष्णव

धर्म का जो प्रवाह देश में बह रहा था उससे हिन्दू-मुसलमान दोनों के बीच साधुता का सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हो गया था, किन्तु इसमें मनुष्यता से अधिक देवत्व का महत्व था। ऐसे समय में 'प्रेम की पीर' लेकर कुछ कवि सामने आये। इन्होंने मुसलमान होकर भी हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं की ही भाषा में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी मनोदशाओं से अपने उदार हृदय का सामञ्जस्य स्थापित कर दिया। कबीर ने परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था, किन्तु प्रत्यक्ष जीवन की एकता का सुझाव जायसी ने दिया, इसमें सन्देह नहीं। प्रेम गाथाकारों में सब से प्रसिद्ध कवि जायसी हुए जिनका 'पदमावत' हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। इस काव्य में कवि ने ऐतिहासिक तथा काल्पनिक कथानकों के सम्मेलन से बड़ी ही मनोहारी रोचकता ला दी है। इसमें मानव-हृदय के सामान्य भावों का चित्रण बड़ी उदारता और सहानुभूति से किया गया है, कवि की प्राकृतिक तन्मयता इतनी सजीव और संचरणशील है कि उसका सारा दृश्य-जगत एक व्यापक तथा अव्यक्त निरंजन ज्योति से आभासित हो उठता है और उसी आनन्दातिरेक में कवि उसके साथ तादात्म्य अनुभव करने लगता है। कवि के तीन ग्रन्थ हैं पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम। इनमें सब से प्रसिद्ध 'पद्मावत' है, इस का आधार एक प्रेम कहानी है। हिन्दी के चरित्र-काव्यों में तुलसी का 'रामचरितमानस' और जायसी का 'पद्मावत' उच्चकोटि के ग्रन्थ हैं। प्रबन्ध क्षेत्र में जायसी का स्थान बहुत ऊँचा है, यद्यपि जायसी का क्षेत्र तुलसी की अपेक्षा बहुत सीमित है तथापि उनकी प्रेम-वेदना अद्वितीय है। 'पदमावत' हिन्दी में प्रेम-

गाथा की परम्परा की पूर्णता का प्रतीक है और पदमावती प्रेम की महारानी।

युद्ध-वर्णन

भइ बगमेल, सेल घन घोरा। औ गज-पेल, अकेल सो गोरा॥
सहस कुंवर सहसौ सत बाँधा। भार-पहार जूझ कर काँधा॥
लगे मरै गोरा के आगे। बाग न मोर घाव मुख लागे॥
जैस पतंग आगि धँसि लेई। एक मुवै, दूसर जिव देई॥
टूटहि सीस अधर धर मारै। लोटहिं कंधहिं कंध निरारै॥
कोई परे रुहिर होइ राते। कोई घायल घूमहि माते॥
कोइ खुरखेह गए भरि भोगी। भसम चढ़ाय परे होइ जोगी॥
घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल।
जूझि कुंवर सब निबरे, गोरा रहा अकेल॥
गोरै देख साथि सब जूझा। आपन काल नियर भा बूझा॥
कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला। लाखन्ह सौं नहिं मरै अकेला॥
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा। जैसे पवन बिदारै घटा॥
जेहि सिर देइ कोपि करवारू। स्यो घोड़े टूटै असवारू॥
लोटहि सीस कबंध निनारे। माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे॥
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा। चाँचरि खेलि आगि जनु लावा॥
हस्ती घोड़ धाइ जो धूका। ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका॥
भइ अग्या सुलतानी, "बेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगे, लिए पदारथ साथ"॥

विरह-वर्णन

फागुन पवन झकोरा बहा। चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा॥
तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देइ झकझोरा॥
तरिवर झरहिं, झरहिं बन ढाखा। भई ओनंत फूलि फरि साखा॥
करहिं बनसपति हिये हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू॥
फाग करहिं सब चाँचरि जोरी। मोहिं तन लाइ दीन्ह जस होरी॥
जो पै पीउ जरत अस पावा। जरत मरत मोहिं रोष न आवा॥
राति-दिवस बस यह जिउ मोरे। लगौं निहोर कंत अब तोरे॥

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि 'पवन! उड़ाव'।
सकु तेहिं मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाव'॥

कुहुकि-कुहुकि जस कोयल रोई। रकत-आँसु घुँघुची बन बोई॥
भइ करमुखी नैन तन राती। को सेराव? बिरहा-दुख ताती॥
जहँ-जहँ ठाढ़ि होइ बनवासी। तहँ-तहँ होइ घुँघुचि कै रासी॥
बूँद-बूँद महँ जानहुँ जीऊ। गुंजा गूँजि करै 'पिउ पीऊ'॥
तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते॥
राते बिंब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक, फाट हिय गोहूँ॥
देखौं जहाँ होइ सोइ राता। जहाँ सो रतन कहै को बाता?॥

नहिं पावस ओहि देसरा, नहिं हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत॥
हाड भये सब किंगरी, नसैं भईं सब ताँति।
रोवँ-रोवँ ते धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भाँति?॥

रहस्यवाद

निति गढ़ बाँचि चलै ससि सूरू । नाहि त होइ बाजि रथ चूरू ॥
पौरी नवौ बज्र कै साजी । सहस सहस तहँ बैठे पाजी ॥
फिरहिं पाँच कोतवार सुभौंरी । काँपै पाँव चपत वह पौरी ॥
पौरिहि पौरि सिंह गढ़ि काढ़े । डरपहिं लोग देखि तहँ ठाढ़े ॥
बहु विधान वै नाहर गढ़े । जनु गाजहिं, चाहहिं सिर चढ़े ॥
टारहिं पूँछ, पसारहिं जीहा । कुंजर डरहि कि गुंजरि लीहा ॥
कनक-सिला गढ़ि सीढ़ी लाई । जगमगाहिं गढ़ ऊपर ताईं ॥

नवौ खंड नव पौरी, औ तहँ बज्र-केवार ।
चारि बसेरे सौं चढ़े, सत सौं उतरै पार ॥

नव पौरी पर दसवँ दुवारा । तेहि पर बाज राज-घरियारा ॥
घरी सो बैठि गनै घरियारी । पहर पहर सो आपनि बारी ॥
जबहीं घरी पूजि तेइ मारा । घरी घरी घरियार पुकारा ॥
परा जो डाँड़ जगत सब डाँड़ा । का निचिंत माटी कर भाँड़ा ? ॥
तुम तेहि चाक चढ़े हौ काँचे । आएहु रहै न थिर होइ बाँचे ॥
घरी जो भरी घटी तुम्ह आऊ । का निचिंत होइ सोउ बटाऊ ?॥
पहरहिं पहर गजर निति होई । हिया बजर, मन जाग न सोई ॥

मुहमद जीवन-जल भरन, रहँट-घरी कै रीति ।
घरी जो आई ज्यों भरी, ढरी जनम गा बीति ॥

सूरदास

जीवनवृत्त—[इनका जन्म सन् १५४० में रुनकता नामक गाँव में जो आगरा से मथुरा जानेवाली सड़क पर स्थिति है हुआ और मृत्युकाल सन् १६२० में पारसोली ग्राम में माना जाता है। कुछ लोगों का मत है कि ये जन्मान्ध थे पर उनकी कविता के परीक्षण से यह बात सच नहीं प्रतीत होती। चौरासी वैष्णवों की वार्ता तथा भक्तमाल के साक्ष्य से यह सारस्वत ब्राह्मण ठहरते हैं।]

भारतीय महापुरुषों की यह विशेषता है कि वे अपनी मृत्यु के उपरांत ईश्वर का अवतार मान लिये जाते हैं। कृष्णोपासना का भी इसी प्रकार विकास हुआ। महाभारत के प्रारम्भिक पर्वों में वे अवतार नहीं बने पर भगवद्गीता में उनकी मान्यता भगवान कृष्ण के रूप में हुई जो ईश्वर की सम्पूर्ण कलाओं के साथ नर-लीला करने तथा संसार का भार हलका करने आये थे। भागवत पुराण में कृष्ण-भक्ति की नीव दृढ़तम पड़ गई। कृष्ण-भक्ति के सभी कवि एक ही संप्रदाय के नहीं थे अतएव उन्होंने विभिन्न रूपों में कृष्ण की उपासना की। विद्यापति तथा मीरा पर विष्णु स्वामी तथा निंबार्क मतों का प्रभाव था और सूरदास में वल्लभाचार्य का। सूरसागर के रचयिता अमर कवि सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्यों में सर्वप्रधान हुए जिनकी सरस वाणी से देश के असंख्य सूखे भक्त-हृदय हरे हो उठे।

जब इनसे महात्मा वल्लभाचार्य मिले तब ये वैरागी के वेश में रहते थे। इन्होंने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया और उन्हीं की आज्ञा से

नित्य अपने उपास्य कृष्ण की स्तुति में नवीन भजन बना बनाकर गाने लगे। इनकी रचनाओं का वृहत् संग्रह सूरसागर है। भक्ति के आवेश में वीणा के साथ गाते हुए जो सरस पद उनकी वाणी से निकले उनकी मर्मस्पर्शिता तथा हृदयहारिता अद्वितीय है।

सूरसागर में कृष्ण-जन्म से कथा का प्रारम्भ होता है और उनकी बाल-लीलाओं का जितना विषद चित्रण सूरदास ने किया है उतना हिन्दी के किसी अन्य कवि ने नहीं किया। कृष्ण बड़े होते हैं, घर से बाहर जाते हैं, गोप सखाओं के साथ खेलते-कूदते हैं। उनके माखन चोरी आदि प्रसंगों में गोपिकाओं की प्रेम-व्यञ्जना के बड़े ही सप्राण चित्र हैं। वंशीवट और यमुनाकुंजों की रमणीक स्थली का रास सौन्दर्य और सुषमा की खान है। गोपी-कृष्ण की यह संयोग लीला अपनी भावना में अनन्य है। संयोग के उपरांत वियोग की भी बारी आती है किन्तु गोपिकायें उन्हें, चाहे वे जहाँ रहें कभी भूल नहीं सकतीं, यही अनन्त प्रेम का दिव्य सन्देश है। सूरदास के कृष्ण महाभारत के कृष्ण की भाँति नीतिज्ञ और पराक्रमी नहीं हैं, वे केवल प्रेम के प्रतीक और सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति हैं। सूरदास ने फुटकर पदों में राम-कथा भी कही है, पर वह तुलसीदास की कृष्ण गीतावली के ही समान प्रयास का परिणाम सी लगती है। उनके कुछ दृष्टकूट और कूट पद भी हैं पर उनका महत्व नहीं के बराबर है। उनका सूरसागर अनुपम ग्रन्थ है। शृंगार के दोनों पक्षों तथा वात्सल्य का जैसा सरस, मधुर और सात्विक स्रोत इसमें प्रवाहित हुआ है अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। तुलसीदास की काव्य-सीमा विस्तृत है परन्तु मधुरता सूर में अधिक है। गीत काव्य में वे अकेले हैं।

बालकृष्ण

१

सोभित कर नवनीत लिये ।

घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किये ।

चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिये ।

लट लटकनि मनौ मत्त मधुपगन मादक मदहिं पिये ।

कठुला कंठ वज्र-केहरि-नख राजत रुचिर हिये ।

धन्य सूर एकौ पल यह सुख का सत कल्प जिये ॥१॥

२

सिखवत चलन जसोदा मैया ।

अरबराय कर पानि गहावति डगमगाय धरनी धरै पैया ।

कबहुँक सुन्दर बदन विलोकति उर आनँद भरि लेति बलैया ।

कबहुँक बल कौं टेरि बुलावति इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया ।

कबहुँक कुल देवता मनावति चिरु जीवौ मेरो बाल कन्हैया ।

सूरदास प्रभु सब सुखदायक अति प्रताप बालक नँदरैया ॥२॥

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ।

किती बार मोहिं दूध पिवत भइ यह अजहुँ है छोटी ॥

तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी ।

काढ़त गुहत अन्हावत ओंछत नागिनि सी भुँइ लोटी ॥

काचो दूध पिवावत पचि-पचि देत न माखन रोटी ।

सूरस्याम चिरजिव दोउ भैया हरि हलधर की जोटी ॥३॥

रूपवर्णन

१

देखु माई सुन्दरता कौ सागर।
बुधि विवेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर।
तनु अति स्याम अगाध अंबुनिधि, कटिपट पीत तरंग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजति भँवर परत सब अंग।
नैन मीन मकराकृत कुंडल भुज बल सुभग भुजंग।
मुकुत माल मनौ मिली सुरसरी द्वै सरिता लिएँ संग।
मोर मुकुट मनिगन आभूपन कटि किंकिन नख चंद।
मनु अडोल वारिधि मैं बिंबित राका उडुगन वृन्द।
बदन चन्द्रमंडल की सोभा अवलोकत सुख देति।
जनु जलनिधि मथि प्रगट कियौ ससि श्री अरु सुधा समेति॥१॥

विरह-वर्णन

१

बरु ये बदरा बरसन आए।
अपनी अवधि जानि नँद-नन्दन! गरजि गगन घन छाए।
सुनियत हैं सुरलोक बसत हैं, सेवक सदा पराए।
चातक कुल की पीर जानिकै जहँ तहँ तें उठि धाए।
द्रुम किए हरित, हरपि मिली बल्ली, दादुर मृतक जिवाए।
छाए निबिड़ नीर तृण जहँ तहँ पंछिन हूँ प्रति भाए।
समुझति नहिं सखि! चूक आपनी बहुतै दिन हरि लाए।
सूरदास स्वामी करुनामय मधुबन बसि बिसराए॥१॥

२

नाहिन रह्यो मन में ठौर।
नँदनंदन अछत कैसे आनिए उर और?
चलत, चितवत, दिवस जागत, सपन सोवत राति!
हृदय तें वह स्याम मूरति छन न इत उत जाति!
कहत कथा अनेक ऊधो लोकलाभ दिखाय।
कहा करौं तन प्रेम-पूरन घट न सिंधु समाय?
स्यामगात सरोज आनन ललित अति मृदुहास!
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास॥२॥

३

सँदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाइ तिहारे सुत की, मया करति ही रहियो।
जद्यपि टेव तुम जानत उनकी, तऊ मोहि कहि आवै।
प्रातहि उठत तिहारे कान्ह को माखन-रोटी भावै।
तेल, उबटनो अरु तातो जल, ताहि देखि भजि जाते।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती, करम करम करि न्हाते।
सूर, पथिक सुनि, मोहि रैन-दिन बढ्यो रहत उर सोच।
मेरो अलक-लड़ैतो मोहन ह्वैहै करत संकोच॥३॥

विनय

प्रभु मोरे औगुन चित न धरो!
समदरसी प्रभु नाम तिहारो अपने पनहि करो।

इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
एहि दुविधा पारस नहिं लीन्हों कंचन करत खरो।
एक नदिया एक नार कहावत मैलो नीर भरो।
जब मिलिकै दोउ एक बरन भए सुरसरि नाम परो।
एक जीव इक ब्रह्म कहावत सूरस्याम झगरो।
अबकी बेर मोहिं पार उतारो नहिं पन जात टरो।

तुलसीदास

जीवनवृत्त—[इनका जन्म सम्वत् १५८९ में सरयूपारी ब्राह्मण के घर में माना जाता है, इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी था। इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था। पत्नी के उपदेश द्वारा इनका विरक्त होना प्रसिद्ध है। सं० १६८० में उनका स्वर्गवास हुआ।]

महात्मा रामानन्द द्वारा विकसित हुई रामभक्ति अपनी उदारता के कारण कृष्णोपासना की भाँति सांप्रदायिकता के कट्टरपन से बची रही इसी कारण इसका देश में बहुत प्रचार और प्रसार हुआ। इनकी शिष्य-परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास हैं जिनकी विश्वविख्यात रामायण हिन्दी साहित्य की सर्वोत्कृष्ट विभूति तथा उत्तर भारत की धर्मप्राण जनता का सर्वस्व है।

अपनी जन्मभूमि राजापुर से गोस्वामी जी अपने गुरु नरहरिदास के साथ कुछ दिन के लिये काशी चले आये थे, और काशी के परम विद्वान् महात्मा शेषसनातन जी से उन्होंने वेद, वेदांग, दर्शन, इतिहास-पुराण आदि का अध्ययन किया। घर छोड़ने के बाद कुछ दिन काशी में और फिर अयोध्या में जाकर रहे। तीर्थ-यात्रा के सिलसिले में जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारिका होते हुए बदरिकाश्रम तक गये और वहाँ से कैलास तथा मानसरोवर भी हो आये। अंत में बहुत दिनों तक चित्रकूट में भी रहे जहाँ अनेक संतों, महात्माओं तथा भक्तों से इनकी भेंट हुई। सम्वत् १६३१ में अयोध्या जाकर इन्होंने रामचरितमानस का आरम्भ किया

और २ वर्ष सात महीने में समाप्त किया। रामायण का कुछ अंश काशी में भी लिखा गया। रामायण की समाप्ति के पश्चात् वे काशी में ही अधिकतर रहते थे। इनके स्नेहियों में अब्दुर्रहीम खानखाना, मानसिंह तथा मधुसूदन सरस्वती आदि थे।

तुलसी का प्रादुर्भाव हिन्दी-काव्य क्षेत्र में एक दिव्य प्रतिभा का प्रमाण है। अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं में उन्होंने अधिकारपूर्वक कविताएँ लिखी हैं। संस्कृत की कोमलकान्त पदावली और अनुप्रासों की चित्रोपम योजना हिन्दी काव्य में गोस्वामी जी की ही देन है। हिन्दी की सब प्रकार की रचना-शैली में उनकी गति थी, कवि की यह उच्चता और किसी को नहीं प्राप्त है। इनके विषय का विस्तार भी बहुत व्यापक है। भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि कहे जाने का सौभाग्य इन्हीं को प्राप्त है। इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य-जीवन के सारे भावों और व्यवहारों तक है तथा व्यक्तिगत साधना के साथ लोक-धर्म की मान्यता उनके काव्य का आदर्श है। गोस्वामी जी के काव्य की सब से बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांग-पूर्णता। जीवन के सभी पक्षों के साथ उसका सामञ्जस्य है। उनका मानस भक्ति, ज्ञान और कर्म का सुन्दर समन्वय है। रचना-कौशल, प्रबन्ध-पटुता तो इनमें कूट-कूटकर भरी है। इनके १२ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जिनमें पाँच बड़े और सात छोटे हैं। दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञा प्रश्नावली, विनयपत्रिका बड़े और रामललानहछू, पार्वतीमंगल, जानकी-मंगल, बरवै रामायण, वैराग्यसंदीपिनी और कृष्णगीतावली छोटे ग्रन्थ हैं। गोस्वामी जी की सर्वांगपूर्ण काव्य-कुशलता का परिचय हिन्दी

को साहित्यिक भाषा बनाने का पूर्ण अधिकारी है।

विनय

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें, संत सुभाव गहौंगो।
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित परत निरन्तर मन, क्रम वचन नेम निवहौंगो।
परुष बचन अति दुसह स्रवन, सुनि तेहिं पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मन, परगुन नहिं दोष कहौंगो।
परिहरि देह - जनित चिंता, दुख-सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि के अविचल भक्ति लहौंगो।

कवितावली से

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छवि भूरि अनंग की दूरि धरैं।
दमकैं दँतिया दुति दामिन ज्यों, किलकैं कल बाल-विनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी-मन-मन्दिर में विहरैं।

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,
केवट की जाति कछू बेद ना पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागि राजा जू !
हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं ?
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वै कै बाद न बढ़ाइहौं।

तुलसी के ईस राम रावरे सौं, साँची कहौं,
बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं ।

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौं,
लङ्क लीलिबे को काल-रसना पसारी है ।
कैधौं ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीर रस बीर तरवारि-सी उघारी है ।
तुलसी सुरेश-चाप, कैधौं दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है ।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
कानन उजार्‌यौं अब नगर प्रजारी है ।

मानस से

सोभा सींव सुभग दोउ बीरा । नील पीत जलजात सरीरा ॥
काक पक्ष सिर सोहत नीके । गुच्छा बिचबिच कुसुम कली के ॥
भाल तिलक स्रमबिंदु सुहाए । स्रवन सुभग भूषन छवि छाए ॥
बिकट भृकुटि कच घूँघर वारे । नव सरोज लोचन रतनारे ॥
चारु चिबुक नासिका कपोला । हास बिलास लेत जनु मोला ॥
मुख छबि कहि न जाइ मोहि पाहीं । जेहि बिलोकि बहु काम लजाहीं ॥
उर मनिमाल कंबु कलग्रीवा । काम कलभ कर भुज बल सींवा ॥
सुमन समेत बामकर दोना । साँवर कुँवर सखी सुठि लोना ॥
केहरि कटि पट पीतधर, सुखमा सील निधान ।
देखि भानुकुल भूषनहिं बिसरा सखिन अपान ॥

(रूपवर्णन)

राखि न सकइ, न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दाहन दाहू॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। विधि गति बाम सदा सब काहू॥
धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदर केरी॥
राखहुँ सुतहि करहुँ अनुरोधू। धरम जाय अरु बंधु-बिरोधू॥
कहउँ जान बन तौ बड़ हानी। संकट-सोच-बिबस भइ रानी॥
बहुरि समुझि तिय धरम सयानी। राम भरत दोउ सुत सम जानी॥
सरल स्वभाव राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात, जाउँ बलि कीन्हेउ नीका। पितु आयसु सब धर्मक टीका॥

राजु देन कहि दीन्ह बन, मोहि न सो दुख लेसु।
तुम बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु॥

जौ केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौ पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥
पितु बन देव मातु बन देवी। खग-मृग चरन-सरोरुह सेवी॥
अंतहु उचित नृपहि बनवासू। बय बिलोकि हिय होइ हरासू॥
बड़ भागी बन अवध अभागी। जो रघुबंस तिलक तुम त्यागी॥

समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
आइ सासु-पद-कमल जुग, बंदि बैठि सिर नाइ॥

(कौशल्या से विदा)

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन॥
पाहि नाथ कहि पाहि गुसाँईं। भूतल परे लकुट की नाईं॥
बचन सप्रेम लषन पहिचाने। करत प्रनाम भरत जिय जाने॥
बंधु सनेह सरस इहि ओरा। उत साहिब सेवा बरजोरा॥

मिलि न जाय नहिं गुदरत बनई। सुकवि लपन मन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥
बरबस लिये उठाइ उर, लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलन लखि, बिसरेउ सबहि अपान॥

(राम-भरत-मिलन)

अंगद नाम बालिकर बेटा। तासों कबहु भई तोहिं भेटा॥
अंगद बचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर मैं जाना॥
अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि बचन अंगद अस कहई॥
दिन दस गए बालि पहँ जाई। पूछेहु कुसल सखा उर लाई॥
सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी॥
खल तव बचन कठिन मैं सहऊँ। नीति धर्म सब जानत अहऊँ॥
कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत परतिय चोरी॥
नाक कान बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी॥
जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि, सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि, ग्रसन हेतु जिमि राहु॥

(रावण-अंगद-सम्वाद)

मीराबाई

जीवनवृत्त—[इनका जन्म सम्वत् १५५५ के लगभग जोधपुर राज्य के संस्थापक राठौर वीर जोधाजी की प्रपौत्री के रूप में हुआ। इनका विवाह प्रसिद्ध महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र कुँवर भोजराज से हुआ था पर ये युवावस्था में ही विधवा हो गईं। पति-सेवा से वंचित होकर इन्होंने अपने को कृष्ण भगवान को समर्पित कर दिया, और अपना समय साधु-संतों के सत्संग में व्यतीत करने लगीं। यह बात उनके देवर को अच्छी न लगी और वे मीरा को अनेक प्रकार से सताने लगे। अन्त में ये मेवाड़ छोड़कर तीर्थयात्रा को निकल गईं और द्वारका में स्थायी रूप से रहने लगीं। वहीं इनका देहान्त सम्वत् १६०३ के लगभग हुआ।]

कृष्णोपासना के अनेक रूप पाये जाते हैं, इस विभेद का कारण वैयक्तिक रुचि तथा प्रतिभा के साथ-साथ मतों की सम्प्रादायिकता भी है। मीरा पर निंबार्क मत का अधिक प्रभाव था, जिसमें भक्त और भगवान् का स्नेहमय सम्बन्ध सिद्ध किया गया है। मीरा के प्रसिद्ध पद—'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' में इसी मत का अनुसरण है। भक्ति में श्रद्धा और स्नेह दोनों का योग रहता है पर जहाँ भक्त केवल अपना और भगवान् का सम्बन्ध लेकर चलता है वहाँ प्रेम का प्राधान्य हो जाता है। मीरा कृष्ण के प्रति इसी प्रेम की दीवानी थीं। मीरा का जीवन आत्म-समर्पण का उज्ज्वल उदाहरण है। भागवत पुराण में श्रीकृष्ण-भक्ति का जो स्वरूप निरूपित किया गया उसका विकास भक्तों की व्यक्तिगत प्रेम-साधना में पूर्ण हुआ। दक्षिण भारत में इसका अधिक प्रचार हुआ

किन्तु उत्तर भारत में मीरा की भक्ति ने भी लोकबन्धनों की उपेक्षा कर कृष्ण के प्रति अपना प्रेम-प्रदर्शन किया। वास्तव में माधुर्यभाव की व्यञ्जना मीरा में अपनी पूर्णता पा लेती है।

प्रसिद्ध भक्त रैदास उनके गुरु थे। उनकी कविता की भाषा राजस्थानी और ब्रजभाषा मिली हुई है। भाषा की सरलता और भावों की तन्मयता उनकी कविता का विशेष गुण है। मीरा का प्रेम माधुर्य-भाव-मूलक था इसलिये कृष्ण की बाललीलाओं की ओर उनका ध्यान न जाना स्वाभाविक था। मीरा के काव्य में कृष्ण का सुन्दर तथा परम मोहक युवा रूप ही चित्रित हुआ है। मीरा का भाव-प्रवण हृदय सर्वथा इसके उपयुक्त था, उनके लिये सखी-भाव में सारा संसार स्त्रीमय हो रहा था; यदि कहीं कोई पुरुष था तो गिरधारीलाल। इस प्रकार मीरा परम प्रेम की इस आनन्दानुभूति की एकमात्र अधिकारिणी थी, तभी तो वह हमारे सामने कवि, भक्त तथा साधक के रूप में न आकर कृष्ण की अनन्य प्रेमिका के रूप में आती है। प्रेम की इस पवित्रता में सभी मनोराग निर्वाणोन्मुख हो जाते हैं। मीरा में मनुष्य की निर्वासित आत्मा का अपने प्रभु से मिलने के लिये आकुल उच्छ्वास एवं अनन्त विरह का दिव्य दर्शन है। हिन्दी काव्य का प्रेम-पुजारी मीरा की आहों से उत्तप्त और उसके प्रेम से सदैव आर्द्र होता रहेगा, क्योंकि मीरा प्रेमी-शिरोमणि है।

रूप-वर्णन

१

तब से मोहिं नंदनंदन दृष्टि पड्यो माई।
तब से परलोक लोक कछू ना सोहाई॥

मोरन की चंद कला सीस मुकुट सोहै ।
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहै ॥
कुंडल की अलक झलक कपोलन पर छाई ।
मनो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई ॥
कुटिल भृकुटि तिलक भाल चितवन में टौना ।
खंजन अरु मधुप मीन भूले मृग छौना ॥
सुन्दर अति नासिका सुग्रीव तीन रेखा ।
नटवर प्रभु भेष धरे रूप अति विसेषा ॥
अधर बिंब अरुन नैन मधुर मंद हासी ।
दसन दमक दाड़िम दुति चमके चपला सी ॥१॥

विरह-वर्णन

२

दरस बिन दूखण लागे नैन ।
जब के तुम बिछुरे प्रभु मोरे कबहुँ न पायो चैन ।
सबद सुनत मेरी छतियाँ काँपै मीठे मीठे बैन ।
बिरह कथा कासूँ कहूँ सजनी बह गई करवत ऐन ।
कल न परत पल हरि मग जोवत भई छमासी रैण ।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे दुख मेटण सुख देण ॥

३

सखी मेरी नींद नसानी हो ।
पिय को पंथ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो ।

सब सखियन मिलि सीख दई मन एक न मानी हो।
बिनि देख्याँ कल नाहिं पड़त जिय ऐसी ठानी हो।
अंग अंग व्याकुल भई मुख पिय पिय बानी हो।
अन्तर वेदन बिरह की वह पीड़ न जानी हो।
ज्यूं चातक घनकूं रटै मछरी जिमि पानी हो।
मीराँ व्याकुल बिरहणी सुध बुध बिसरानी हो॥

४

हेरी मै तो दरद दिवाणी मोरा दरद न जाणै कोइ।
घाइल की गति घाइल जाणैं की जिण लाई होइ।
जौहरि की गति जौहरी जाणैं की जिन जौहर होइ।
सूली ऊपर सेज हमारी सोवण किस विध होइ।
गगन मंडल पै सेज पिया की किस विध मिलणा होइ।
दरद की मारी बन बन डोलूं वैद मिल्या नहिं कोइ।
मीराँ की प्रभु पीर मिटेगी जब वैद साँवलिया होइ॥

उपदेश

नहिं ऐसो जनम बारंबार।

का जानूं कछु पुण्य प्रगटे मानुसा अवतार।
बढ़त छिन छिन घटत पल पल जात न लागे बार।
बिरछ के ज्यों पात टूटे, लागे बहुरि न डार।
भौसागर अति जोर कहिये विषम ओखी धार।
राम नाम का बाँध बेड़ा वेगि उतरे पार।

ज्ञान-चोसर मँडी चोहटे सुरत पासा सार।
या दुनिया में रची बाजी जीत भावें हार।
साधु संत महन्त ज्ञानी चलत करत पुकार।
दास मीरा लाल गिरधर जीवणा दिन च्यार ॥४॥

रहस्यवाद

लगी मोहि राम खुमारी हो।
रिमझिम बसै मेहड़ा भीजे तन सारी हो।
चहुँ दिसि दमकै दाँमिणी गरजै घंन भारी हो।
सतगुरु भेद बताइया खोली भरम-किंवारी हो।
सुन्नि मंडल की सेझ में पौढ़े पिव-प्यारी हो।
पाँच-पचीसूं परहर्या सब दुंद बिसारी हो।
सब घट दीसै आतमा सब ही सूँ न्यारी हो।
दीपक जोऊँ ज्ञान का चढ़ूं अगम अटारी हो।
मीराँ दासी राम की अमरित बलिहारी हो।

नरोत्तमदास

जीवनवृत्त—[जन्म सम्वत् १५५० के लगभग सीतापुर जिले के बाड़ी नामक कस्बे में हुआ था। शिवसिंह-सरोज में इनका सम्वत् १६०२ में वर्तमान रहना लिखा है। नरोत्तमदास का स्वर्गवास १६०२ के आस पास ही मानना चाहिये। इनके सम्बन्ध में इससे अधिक और कुछ ज्ञात नहीं है।]

भक्ति-काल की परम्परा और ब्रजभाषा में नरोत्तमदास प्रथम और सफल यथार्थवादी कवि हैं। उस समय की गार्हस्थिक दरिद्र परिस्थितियों का उन्होंने बहुत सुन्दर, सफल एवं सप्राण वर्णन किया है। कृष्ण के चरित्र को यथार्थ की जिस भूमि पर स्थिति करके कवि ने उनकी भक्त-वत्सला दिखलाई है वह अत्यंत रोचक तथा हृदयग्राही है। 'सुदामा-चरित्र' ग्रन्थ इनका बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि एक ग्रन्थ 'ध्रुव-चरित्र' भी उन्होंने लिखा था। 'सुदामा-चरित्र' में सुदामा का मित्रोचित आभिजात्य वर्ग की विचार-धारा का परिचय प्राप्त करने में सहायक है। पति-पत्नी की विवादात्मक बातें सहज स्वाभाविक और बहुत सुन्दर हैं। नरोत्तम की भाषा बहुत मँजी हुई और व्यवस्थित है। श्रीकृष्ण की दीनों के प्रति ममता तथा मनुष्य मात्र के प्रति करुणा का बहुत ही मर्म-स्पर्शी चित्रण कवि ने किया है। इनकी कविता में घरेलू बोलचाल तथा प्रचलित शब्दों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया गया है। भाव, भाषा तथा छन्द सभी के विचार से नरोत्तमदास की कविता प्रसाद गुण से पूर्ण और सुरुचि सम्पन्न है। ब्रजभाषा में यथार्थ की स्वाभाविक सामान्य

भूमि पर अपने काव्य को प्रतिष्ठित करना इस कवि की सब से अलग और एक बहुत बड़ी प्रतिभा का प्रतीक है।

सुदामा-चरित्र से

विप्र सुदामा बसत हो, सदा आपने धाम।
भिच्छा करि भोजन करै, हिये जपै हरिनाम॥
ताकी घरनी पतिव्रता, गहै वेद की रीति।
सलज सुसील सुबुद्धि अति, पति सेवा सों प्रीति॥

पत्नी—कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट,
न चाहति हौं दधि दूध मिठौती।
सीत बितीतत जौ सिसियात,
तो हौं हठती पै तुम्हैं न हठौती॥
जो जनती न हितू हरि सो,
तो मैं काहे को द्वारका पेलि पठौती।
या घर तें न गयो कबहूँ पिय,
टूटो तवा अरु फूटी कठौती॥

सुदामा—प्रीति मैं चूक न है उनके,
हरि मो मिलिहैं उठि कंठ लगायकै।
द्वार गये कछु दैहैं भलो हमैं,
द्वारकानाथ हैं सब लायकै॥
या विधि बीति गये पन द्वै,
अब तो पहुँचो बिरधापन आयकै।

जीवन केतो है जाके लिये,
　　हरि सों अब होहुँ कनावड़ो जासके॥

सिद्धि करी गनपति सुमिर, बाँधि दुपटिया खूँट।
माँगत खात चले तहाँ, मारग वाली बूट॥

द्वारपाल—सीस पगा न झगा तन मे, प्रभु,
　　जाने को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी सी, लटी दुपटी, अरु,
　　पाँय उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खरो द्विज दुर्बल, देखि
　　रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम,
　　बतावत आपनो नाम सुदामा॥

जिनके चरनन को सलिल, हरत जगत संताप।
पाँव सुदामा विप्र के, धोवत ते हरि आप॥

ऐसे बेहाल बेवाइन सों पग,
　　कंटकजाल लगे पुनि जोये।
"हाय महादुख पायो सखा! तुम
　　आये इतै न, कितै दिन खोये"॥
देखि सुदामा की दीन दसा,
　　करुना करिकै करुनानिधि रोये।

पानी परात को हाथ छुयो नहिं,
नैनन के जल सों पग धोये ॥
"आगे चना गुरु-मातु दये, ते
लये तुम चाबि हमैं नहिं दीने" ।
स्याम कही मुसुकाय सुदामा सों,
"चोरी की बानि मैं हौ जु प्रवीने ॥
पोटरी काँख में चाँपि रहे तुम,
खोलत नाहिं सुधारस भीने ।
पाछिली बानि अजौं न तजी, तुम
तैसेइ भाभी के तंदुल कीने" ॥

तंदुल माँगत मोहन, बिप्र,
सकोच तें देत नहीं अभिलाखे ।
"है नहि पास कछू" कहिकै तेहि
गोपि धनी बिधि काँख मे राखे ॥
सो लखि दीनदयाल तहाँ, "तुम
चोरी करी यह" यों हँसि भाखे ।
खोलि कै पोट, अछोट मुठी
गिरिधारन चाटर, चाउ सों चाखे ॥

सुदामा—फूटी एक थारी, बिन टोटनी की झारी हुती,
बाँस की पिटारी, औ कँथारी हुती टाट की ।

वेंटै बिन छुरी औ कमंडलु सौं टूट बहौ,
फटे हुते पावौ, पाटो टूटी एक खाट की ॥
पथरौटा, काठ को कठौता, कहूँ दीसै नाहिं,
पीतर को लोटो हो, कटोरो हो न बाट की ।
कामरी फटी सी हुती डोड़न की माला ताक,
गोमती की माटी की न सुध कहुँ माट की ।

कही बाँमनी आयकै, "यहै कंत निज गेह ।
श्री जदुपति तिहुँ लोक मैं, कीन्हौ प्रगट सनेह" ॥

बिहारीलाल

जीवनवृत्त—[इनका जन्म सम्वत् १६६० में ग्वालियर के पास बसुवा गोविन्दपुर नामक गाँव में हुआ था। युवावस्था में यह अपनी ससुराल मथुरा में जाकर रहने लगे थे फिर वहीं से जयपुर चले गये और सतसई की रचना की। इनकी मृत्यु लगभग १७२० सम्वत् में मानी जाती है। ये धौम्यगोती माथुर चौबे थे।]

श्रृंगार काव्यों में जितना सम्मान 'बिहारी-सतसई' का हुआ है उतना और किसी का नहीं। बिहारी के दोहों का हिन्दी-साहित्य में बहुत प्रचार है। इस ग्रन्थ की अनेकों टीकाएँ हो चुकी हैं और होती जा रही हैं। बिहारी के काव्योद्घाटन का बहुत ही रोचक कथानक है। जिस समय बिहारीलाल जयपुर के महाराज जयसिंह के यहाँ पहुँचे उस समय महाराज अपनी नवविवाहिता छोटी पत्नी के प्रेम में इतने लीन रहा करते थे कि अपना राजकाज देखने के लिये कभी महलों के बाहर निकलते ही न थे। महाराज के शुभचिन्तकों ने बिहारी का यह दोहा उनके पास महल के भीतर भिजवाया—

नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि विकास यहि काल।
अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल॥

कहा जाता है कि इस पर महाराज बाहर निकले और सभा में बिहारी का मान बहुत बढ़ गया। मुक्तक काव्य का गुण बिहारी के दोहों में अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँच गया है। समास-शक्ति की बिहारी

में अद्भुत क्षमता है, उसी कारण वे दोहे से रस का इतना पूर्ण परिपाक कर सके। भावव्यञ्जना, रसव्यञ्जना तथा वस्तुव्यञ्जना की सरस रोचकता के बिहारी महान कलाकार हैं। शृंगार रस के संचारी भावों की अभिव्यक्ति इतनी मर्मस्पर्शिनी होती है कि उसकी तन्मयता कुछ क्षण के लिये सारे वातावरण को छा लेती है। विशुद्ध काव्य के अतिरिक्त बिहारी ने कुछ युक्तियाँ और सूक्तियाँ भी लिखी हैं। उनकी भाषा सरल साहित्यिक है। यद्यपि भावों का उदात्त स्वरूप बिहारी में कम है तथापि शृंगार रस की पूर्ण व्यञ्जना उनकी बहुत बड़ी विशेषता है, जिसके कारण केवल 'सतसई' लिखकर ही कवि ने एक सम्मानित स्थान साहित्य में पाया है। छोटे-छोटे दोहों में इतना गूढ़ तथा अपूर्व भाव भर देना कवि की प्रतिभा का परिचायक है।

उनके ७०० दोहों का संग्रह 'बिहारी-सतसई' के नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने किसी दूसरे ग्रन्थ की रचना नहीं की। फिर भी वे अपने समय के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं जो कवि की प्रतिभा का प्रमाण है। एक काव्य-ग्रन्थ से किसी भी कवि ने ऐसी ख्याति नहीं पाई।

सौन्दर्य-वर्णन

१

मोर मुकुट की चन्द्रिकन, यों राजत नँदनन्द।
मनु ससि सेखर की अकस, किय सेखर सत चन्द॥

मकराकृति गोपाल के सोहत कुंडल कान।
धर्यो मनौ हिय घर समर, ड्योढ़ी लसत निसान॥

अधर धरत हरि के परत, ओठ डीठि पट जोत।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष रँग होत॥
सोहत ओढ़े पीतु पटु, श्याम सलोने गात।
मनौ नीलमणि सैल पर, आतप पर्यो प्रभात॥

२

अंग अंग नग जगमगत, दीप शिखा सी देह।
दिया बढ़ाये हूँ रहै, बड़ो उज्यारो गेह॥
केसरि कै सरि क्यो सके, चंपकु कितकु अनूप।
जातु रूप लखि जाति दुरि, जातु रूप को रूपु॥
मानहुँ बिधि तन अच्छ छवि, स्वच्छ राखिवे काज।
दृग-पग पोंछन कौ करे, भूषन पायन्दाज॥

विरह-वर्णन

करी बिरह ऐसी तऊ, गैल न छाड़तु नीचु।
दीनेहू चसमा चखनु, चाहै लहै न मीचु॥
औंधाई सीसी सुलखि, बिरह बरनि बिललात।
बीचहिं सूखि गुलाब गो, छींटौ छुई न गात॥
पलन प्रकटि बरुनीन बढ़ि, नहिं कपोल ठहरात।
अँसुआ परि छतिया छिनकु, छन छनाय छिपि जात॥
बिरह जरी लखि जीगनन, कह्यो न उहि कै बार।
अरी! आव भजि भीतरहिं, बरसत आजु अँगार॥
धुरवा होहिं न अलि उठै, धुवा धरनि चहुँ कोद।
जारत आवत जगत कौं, पावस प्रथम पयोद॥

बिरह विकल बिनुहीं लिखी, पाती दई पठाय।
आँक बिहूनीयो सुचित, सूने बाँचत जाय॥
बिरह बिपति दिनु परतहिं, तजे सुखनु सब अंग।
रहि अबलौंऽब दुखौ भये, चलाचलै जिय संग॥
जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ, स्यामु सुभग सिरमौर।
बिन हूँ उन छिनु गहि रहतु, दृगनु अजौं वह ठौर॥
सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन अजहूँ ह्वै जात वह, वा जमुना के तीर॥

विविध

नीकी दई अनाकिनी, फीकी परी गोहारि।
तज्यो मनौ तारन बिरदु, बारक बारन तारि॥
जम-करि-मुँह-तर हरि पर्‌यो, इहिं धरि हरि चित लाउ।
विषय तृपा परिहरि अजौं, नर-हरि के गुन गाउ॥
दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साँईहिं न भूलि।
दई दई क्यौं करतु है, दई दई सो कबूलि॥
बंधु भये का दीन के, को तार्‌यो रघुराय।
तूठे तूठे फिरत हौ, झूठे बिरद कहाय॥
जप माला छापैं तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै राम॥
स्वारथु, सुकृतु न, श्रमु वृथा, देखि बिहंग बिचारि।
बाज पराये पानि परि, तूँ पच्छीनु न मारि॥

को कहि सकै बड़ेन सौं, लखैं बड़ीयौ भूल ।
दीने दई गुलाब की, इन डारन वे फूल ॥

पावस घन अँधियार महि, रह्यो भेद नहि आनु ।
रात द्यौस जान्यौ परत, लखि चकई चकवानु ॥

अरुन सरोरुह कर चरन, दृग खञ्जन, मुख चन्द ।
समय आय सुंदरि सरद, काहि न करति अनन्द ॥

भूषण

जीवनवृत्त—[भूषण का जन्म सम्वत् १६७० के लगभग कानपुर जिले के तिकवापुर नामक गाँव में एक ब्राह्मण घर में हुआ था। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि चिन्तामणि और मतिराम उनके भाई थे। उनका देहान्त सम्वत् १७७२ माना जाता है।]

हिन्दी काव्य-साहित्य में सूर और तुलसी के समय तक कवित्व की इतनी अभिवृद्धि हो चुकी थी कि कुछ लोगों का ध्यान भाषा और भावों को अलंकृत करने तथा संस्कृत काव्य-रीति का अनुसरण करने की ओर गया। यहीं से रीतिकाल का प्रारम्भ होता है। राधाकृष्ण के वर्णन में कवियों ने सौन्दर्य, विरह और प्रेम के इतने मधुर गीत गाये कि उसमें स्वभावतः श्रृंगारिकता का आधिक्य हो गया। बाद में राज-दरबारों में हिन्दी कविता को आश्रय मिलने के कारण कृष्ण-भक्ति की कविता का और अधिक अधःपतन हो चला, तत्कालीन नरेशों की विलास-चेष्टाओं की परितृप्ति और अनुमोदन के लिये कृष्ण तथा गोपियों की ओट में हिन्दी के कवियों ने कलुषित तथा वासनोचित प्रेम की उद्भावना की और साहित्य का उच्च लक्ष्य भुला दिया। इस प्रकार रीति-काल के भीतर स्थूल श्रृंगार की प्रधानता हो गई। कुछ कवियों ने अपने आश्रय-दाताओं की स्तुति में उनकी वीरता का भी उल्लेख किया मगर वह शुष्क प्रथापालन मात्र है। भूषण ही एक ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने ऐसे दो नायकों को अपने वीर काव्य का विषय बनाया जो अन्याय-दमन में

तत्पर और हिन्दू-धर्म के संरक्षक इतिहासप्रसिद्ध वीर हैं। जनता के हृदय में उन दोनों के प्रति श्रद्धा और सम्मान का भाव पाया जाता है, इसी से कवि भूषण के वीररस का स्वागत सारे देश में एक स्वर से हुआ। शिवाजी और छत्रसाल की वीरता के वर्णनों को कोई कवि की झूठी खुशामद नहीं कह सकता। वे हिन्दू-जनता और हिन्दू-धर्म के प्रतिनिधि हैं, उनकी वीरता, धीरता और देशप्रेम के विषय में जो कुछ कहा जाय वह थोड़ा है। शिवराजभूषण, शिवाबावनी और छत्रसाल-दसक इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं, इनके अतिरिक्त तीन ग्रन्थ इनके और कहे जाते हैं—भूषणउल्लास, दूषणउल्लास और भूषणहजारा। भूषण भारतीयता के कवि हैं। उनकी भाषा ओजमयी और वीररस के उपयुक्त शब्द-सौष्ठव से पूर्ण है परन्तु वह अधिकतर अव्यवस्थित है। उनके कवित्त बड़े ही शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक हैं; उन्हें पढ़कर वीरता तथा उत्साह की उमंग प्राणों में दौड़ जाती है। तभी तो महाराज छत्रसाल ने इनकी पालकी में अपना कंधा लगाया था, जिस पर भूषण ने कहा कि 'सिवा को वखानौं कि बखानौं छत्रसाल को।" कोमल मधुर व्रजभाषा में भी वीररस की कविता लिखकर इन्होंने उस भाषा को परुषता दी, यह कवि की सब से बड़ी देन है। कहा जाता है कि इन्हें एक-एक छन्द पर शिवाजी से लाखों रुपए मिले।

शिवाजी-प्रशंसा

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी।
राम युधिष्ठिर के वरने बलमीकहु व्यास के अंग सोहानी॥

'भूषन' यों कलि के कवि राजन राजन के गुन गाय नसानी।
पुन्य चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी॥

साजि चतुरंग वीर रंग मै तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवा जी जंग जीतन चलत हैं।
'भूषन' भनत नाद विहद नगारन के,
नदी नद मद गब्बरन के रलत हैं॥
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल गैल,
गजन की ठेल पेल सैल उलसत हैं।
तारा सों तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत हैं॥

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
नाहीं ठहराने राव राने देस देस के।
नभ भहराने ग्राम नगर पराने सुनि,
बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के॥
हाथिन के हौदा उकसाने, कुम्भ कुंजर के,
भौंन को भजाने, अलि छूटे लट केस के।
दल के दरारे हू ते कमठ करारे फूटे,
केरा कैसे पात विहराने फन सेस के॥

ऊँचे घोर मंदर के अन्दर रहन वारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।

कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करैं,
तीन बेर खातीं सो तौ तीन बेर खाती हैं ॥
भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग,
बिजन डुलातीं तेऽब बिजन डुलाती हैं ।
'भूषन' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं ॥

छत्रसाल की प्रशंसा

२

निकसत म्यान तें मयूख प्रलै भानु की सी,
फारैं तमतोम-से गयंदन के जाल को ।
लागति लपटि कंठ बैरिन के नागिन सी,
रुद्रहि रिझावै दै-दै मुंडन की माल को ॥
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को ।
प्रति भट कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका-सी किलकि कलेऊ देती काल को ॥

भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजंगिनी-सी,
खेदि-खेदि खाती दीह दारुन दलन के ।
बखतर पाखरन बीच धँसि जाति, मीन,
पैरि पार जाति परवाह ज्यों जलन के ॥

रैया राय चंपति को छत्रसाल महाराज,
'भूखन' सकत को बखान कै बलन के।
पच्छी पर छीने ऐसे परे पर छीने वीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के॥

शेख

जीवन-वृत्त—[लगभग सम्वत् १७१२ में आलम नाम के एक बहुत अच्छे कवि हो गये हैं, शेख इन्हीं की पत्नी थी। आलम और शेख के प्रेम का सूत्रपात बहुत ही कवित्वमय है। आलम ब्राह्मण तथा शेख रँगरेजिन थी किन्तु आलम, शेख के प्रेम के कारण मुसलमान हो गये और उसका प्रेम प्राप्त किया। कहा जाता है एक बार आलम ने शेख के पास अपनी पगड़ी रँगने को भेजी और साथ ही अपने एक दोहे का आधा चरण भी भेज दिया। शेख ने उसे देखा और उसकी पूर्ति करके सम्पूर्ण दोहा पगड़ी के साथ आलम को लौटा दिया। आलम इस पूर्ति पर इतने मुग्ध हो गये कि शेख से विवाह कर लिया।]

तुलसी, मीरा और सूर ने जो भक्तिपूर्ण काव्य-धारा हिन्दी-साहित्य में प्रवाहित की थी वह आगे चलकर क्षीण पड़ गई। इनके बाद के कवि इन कवियों का साधनामय विस्तृत क्षेत्र नहीं अपना सके, बल्कि एक विशेष सीमा के ही भीतर अपनी काव्य-प्रतिभा का चमत्कार दिखलाते रहे। राधाकृष्ण के जीवन की व्यापकता तथा सम्पूर्णता को भुलाकर कवि लोग उन्हें साधारण नायिका तथा नायक की भाँति चित्रित करने लगे। बिहारी, मतिराम तथा देव की प्रायः यह प्रवृत्ति रही। राधाकृष्ण की शृंगारमयी रूपरेखा में कवियों ने मुक्त रूप से अपने को छोड़ दिया। शेख का भी यही हाल हुआ। राधा-कृष्ण को एक साधारण नायिका तथा नायक की भाँति सामने रखकर उनके वियोग तथा संयोग का इन्होंने चित्रण किया है, परन्तु शेख का इसमें कोई विशेष हाथ नहीं था

क्योंकि वह युग ही इसी भाव-धारा का प्रतीक बन रहा था। स्त्री-हृदय की सहज-स्वाभाविक स्नेहशीलता के साथ शेख ने वियोग के बहुत ही मार्मिक पक्षों का उद्‌घाटन किया है। अपने हृदय के भावों का प्रस्फुटन शेख की कविता में बहुत ही सरस रूप से पाया जाता है।

शेख का नाम स्त्री-कवियों में बड़े सम्मान से लिया जाता है। श्रृंगार ही उसकी कविता का मुख्य विषय है।

वात्सल्य

१

बीस बिधि आऊँ दिन बारीये न पाऊँ और,
याही काज वाही घर बाँसनि की बारी है।
नेकु फिरि ऐहैं कैहैं दै री दै जसोदा मोहिं,
मो पै हठि माँगैं बंशी और कहूँ डारी है॥
'सेख' कहै तुम सिखवो न कछु राम याहि,
भारी गरिहाइनु की सीखे लेतु गारी है।
संग लाइ भैया नेकु न्यारो न कन्हैया कीजै,
बलन बलैया लैकै मैया बलिहारी है॥

२

जमुन में बैठनु, परोसी भए पच्छिनि के,
कारन के डार घर बार करि रहि हैं।
'सेख' भूमि डारि हैं कि बिस-बेलि घसि हैं कि,
फूल हैं कि काँसि हैं, कौसल्या काहि कहि हैं॥

वन, गिरि, बेरनि करेरे दुख कैसे करि,
कोंवरे कुमार सुकुमार मेरे सहि हैं।
मैले तन का ए कसैले छाल रूखन के,
वन फल फोरि छोलि छाल खाइ रहि हैं॥

प्रेम

जब सुधि आवै तब तन बिनु-सुधि होत,
जब सुधि आये मन होत पात पात है।
'सेख' कहै सरद सहेट के वे गीत सुनि,
बाँसुरी की धुनि नटसाल गात गात है॥
तुम कह्यो मानौ, उपदेश हम नाहीं कह्यो,
जैसी एक नाहीं तैसी नाहीं सौकसात है।
प्रेम से विरुधौ जिनि, हाहा हियो रूँधौ जिनि,
ऊधौ लाख बातनि की सूधी एक बात है॥

श्रृंगार

सुनि चित चाहै जाकी किंकिनी की झनकार,
करन कला सी सोइ गति जु विदेह की।
'सेख' भनि आजु है सुफेरि नहिं काल्ह जैसी,
निकसी है राधे की निकाई निधि नेह की॥
फूल की सी आभा सब सोभा लै सकेलि धरी,
फूलि ऐसे लाल भूलि जैहै सुधि गेह की।
कोटि कवि पचैं, तऊ बरनि न पावैं कवि,
बेसरि उतारि छबि बेसरि के बेह की॥

विनय

पैंडों सम सूधौ बैड़ों कठिन किंवार द्वार,
द्वारपाल नहीं तहाँ सबल भगति है।
'सेख' भनि तहाँ मेरे त्रिभुवनराय हैं जु,
दीनबंधु स्वामी सुरपतिन को पति है॥
वैरी को न बैरु, बरियाई को न परवेस,
हीने को हटक नाहीं, छीने को सकति है।
हाथी की हुँकार पल पाछे पहुँचन पावे,
चींटी की चिंघार पहिले ही पहुँचति है॥

सहजोबाई

जीवनवृत्त—[सहजो के जीवन-वृत्त का कुछ ठीक पता अभी तक नहीं चला, केवल इतना ज्ञात है कि ये राजपूताने के प्रसिद्ध दूसर कुल में उत्पन्न हुई थीं। इनके पदों में इस बात का संकेत मिलता है कि बालावस्था से ही इनका झुकाव भक्ति-पथ की ओर उन्मुख था जिसके फलस्वरूप इन्होंने अपना विवाह तक नहीं किया और घर से बाहर निकल कर अपने गुरु चरणदास के पास रहने लगीं। कहा जाता है कि इनका जन्म सम्वत् १८०० के लगभग हुआ था। इनकी मृत्यु-तिथि तथा जीवन की अन्य घटनाओं का अभी तक पता नहीं चला।]

भक्ति-काव्य की परम्परा में सहजोबाई का स्थान बहुत ऊँचा है। साधु-सन्तों की ज़बान पर इनके पद नाचते हैं। वैराग्य की विशेष विधि का इन्होंने उद्घाटन किया है। इनकी तन्मयता और भक्ति के आवेश में आत्म-विस्मृति की विह्वलता दर्शनीय है। ईश्वर-प्रेम तथा वियोग और वैराग्य विषयक इनके पद बड़े ही सरल और साधनासिद्ध ज्ञात होते हैं। भगवान की भक्ति का आन्तरिक पक्ष तथा उसकी व्यापकता का बाह्य पक्ष दोनों का इन्होंने बहुत ही सजीव चित्रण किया है। सहजो के पदों में साकार तथा निराकार दोनों भक्ति-पद्धतियों का पूर्ण निरूपण एवं निर्वाह है। भक्ति-प्राप्ति की निश्छल साधना में उन्होंने गुरु का बहुत बड़ा महत्व स्वीकार किया है। इनके पूर्ववर्ती कुछ कवियों ने यद्यपि 'सतगुरु गान' और 'गुरु की महिमा' का उल्लेख किया है तथापि सहजो की गुरु-उपासना अपने ढंग की निराली है।

ये अपने गुरु चरणदास को ईश्वर का साकार रूप मानती थीं। इनकी उपासना, आराधना सभी कुछ ईश्वर रूप गुरु के माध्यम से अपना विकास करती है। इनका विचार था कि विना गुरु के न तो सच्चा ज्ञान प्राप्त होता न भक्ति का पथ ही प्राप्त होता है। इस प्रकार इनकी साकारोपासना का प्रतीक गुरु है। निराकारोपासना में इन्होंने विश्व-व्यापी परमात्मा का स्मरण किया है। इनका निर्गुण-पथ भावना की अत्यन्त पवित्र भूमि पर स्थित है। इनके पद वास्तव में इनके नाम के अनुसार बहुत ही सहज और सरल हैं। भक्त कवियित्रियों में इनका नाम विशेष आदर से लिया जाता है।

रूप-वर्णन

मुकट लटक अटकी मन माहीं।
निरतत नटवर मदन मनोहर, कुंडल झलक पलक बिथुराई ॥१॥
नाक बुलाक हलत मुक्ताहल, होंठ मटक गति भौंहँ चलाई।
ठुमुक ठुमुक पग धरत धरनि पर, बाहँ उठाय करत चतुराई ॥२॥
झुनक झुनक नूपुर झनकारत, ततायेई थेई रीझ रिझाई।
चरनदास सहजो हिये अंतर, भवन करौ जित रहौ सदाई ॥३॥

उपदेश

पानी का सा बुलबुला, यह तन ऐसा होय।
पीव मिलन की ठानिये, रहिये ना पड़ि सोय ॥
रहिये ना पड़ि सोइ बहुरि नहिं मनुखा देही।
आपन ही कूँ खोजु, मिलै तब राम सनेही ॥

हरि कूँ भूले जो फिरैं, सहजो जीवन छार।
सुखिया जब ही होयगो, सुमिरैगो करतार॥

गुरु-स्तव

हमारे गुरु पूरन दातार।
अभय दान दीनन को दीन्हें, किये भवजल पार॥१॥
जन्म जन्म के बंधन काटे, जम को बंधनिवार।
रंक हुते सो राजा कीन्हें, हरिधन दियौ अपार॥२॥
देवैं ज्ञान भक्ति पुनि देवैं, जोग बतावनहार।
तन मन वचन सकल सुखदाई, हिरदे बुधि उँजियार॥३॥
सब दुख-गंजन पातक-भंजन, रंजन ध्यान विचार।
साजन दुर्जन जो चलि आवै, एकहि दृष्टि निहार॥४॥
आनँद रूप सरूप-मई है, लिप्त नहीं संसार।
चरनदास गुरु सहजो केरे, नमो नमो बारम्बार॥५॥

विविध

एक घड़ी का मोल ना, दिन का कहाँ बखान।
सहजो ताहि न खोइये, बिना भजन भगवान॥
पारस नाम अमोल है, धनवन्ते घर होय।
परख नहीं कंगाल कूँ, सहजो डारै खोय॥
मेह सहै सहजो कहै, सहै सीत औ घाम।
पर्वत बैठो तप करै, तौ भी अधिको नाम॥

सहजो सुमिरन कीजिये, हिरदै माहिं दुराय ।
होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोइ पाय ॥
जागत में सुमिरन करै, सोवत में लौ लाय ।
सहजो इक रस ही रहै, तार टूटि नहिं जाय ॥

भारतेंदु हरिश्चन्द्र

जीवन-वृत्त—[आपका जन्म सम्वत् १९०७ में प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वंश में काशी में हुआ। बाल्यावस्था में ही आप माता-पिता के स्नेह से वञ्चित हो गए। केवल पैंतिस वर्ष की अवस्था में आपका शरीरान्त हुआ पर इस छोटी अवधि में ये अकेले जितना कार्य कर गए उतना अनेक व्यक्ति मिलकर न कर पाते।]

हिन्दी साहित्य की विनाशकारिणी स्थूल शृंगारिक कविता के प्रतिकूल आन्दोलन का श्रीगणेश उस दिन से समझा जाना चाहिये जिस दिन भारतेंदु ने अपने 'भारत-दुर्दशा' नाटक के प्रारम्भ में सम्पूर्ण देशवासियों को सम्बोधित करके देश की गिरी हुई अवस्था पर उन्हें आँसू बहाने के लिए आमंत्रित किया था। इस देश के और यहाँ के साहित्य के इतिहास में वह दिन अमर है। उस दिन मानो स्वयं सरस्वती राष्ट्रभाषा के कवि-कंठ में बैठकर स्वयं बोल उठी थी, जिसके स्वर में शृंगारिक वीणा की झंकार की अपेक्षा जीवन-संघर्ष की गम्भीर गर्जना थी। साहित्य की नवीन चेतना का वह मंगलमय दिन था। भारतेंदु का कवि हिन्दी में नवीन प्रगति का सन्देश लेकर आया था। उनकी कविता में सूर, तुलसी तथा कबीर की प्रोज्ज्वल प्रतिभा नहीं है, परन्तु रीति-कविता की सीमित परिधि से जीवन और जगत् के शुद्ध वातावरण में आने का श्रेय भारतेन्दु को अवश्य मिलना चाहिये। उनका प्रभाव भाषा और साहित्य दोनों पर बहुत है। उन्होंने जिस प्रकार गद्य को

भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही प्रवाहपूर्ण स्वच्छ रूप दिया, उसी प्रकार साहित्य को भी नये मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। उनका साहित्य-संस्कार अपनी महानता में अकेला है। वे वर्तमान गद्य के प्रवर्तक हैं। सम्वत् १६२२ में वे अपने परिवार के साथ जगन्नाथ जी गये, यही यात्रा उनकी साहित्य सेवा का प्रारम्भ है। सम्वत् १६२५ में उन्होंने 'विद्या सुन्दर नाटक' बँगला से अनुवाद करके प्रकाशित किया। यह हिन्दी गद्य की सुडौलता का आभास था। इसी वर्ष उन्होंने एक पत्रिका 'कवि-वचन-सुधा' नाम से निकाली, जिसमें गद्य-पद्य दोनों का प्रकाशन होता था। सम्वत् १६३० में उन्होंने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' नाम की मासिक पत्रिका निकाली जो बाद में 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' नाम से प्रख्यात हुई। इसी 'चन्द्रिका' से हिन्दी गद्य की चन्द्रिका चमकी। गद्य के पश्चात् उन्होंने नाटकों की ओर ध्यान दिया। उनके पहले केवल दो मौलिक नाटक हिन्दी में थे, वे भी ब्रजभाषा में। उनके मौलिक नाटकों की संख्या ८ है और करीब इतने ही उन्होंने अनुवाद भी किये। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चन्द्रावली, विषस्य विषमौषधम्, भारत-दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेरनगरी, प्रेम-जोगिनी और सती-प्रताप उनकी मौलिक कृतियाँ हैं। उन्होंने नाटक अधिक लिखे पर 'काश्मीर-कुसुम', 'बादशाहदर्पण' आदि लिख कर उन्होंने इतिहास रचना का मार्ग भी दिखाया। उनके जीवन, व्यक्तित्व तथा साहित्य से सारे देश में एक जागृति की लहर दौड़ गई। प्राचीन-नवीन के उस संधिकाल में जैसी शीतल कला का संचरण आवश्यक था वैसी स्निग्ध शक्ति-कला के साथ भारतेंदु का उदय हुआ।

यमुना-छवि-वर्णन

१

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये,
झुके कूल सों जल परसन हित मनहुँ सुहाये।
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज निज सोभा,
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल-लोभा।
मनु आतप वारन तीर कों सिमिटि सबै छाये रहत,
कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन-मन सुख लहत।

२

कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत,
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जल जलकुक्कुट धावत।
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत,
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत।
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर बिबिध पच्छी करत,
जल-पान न्हान करि सुख-भरे तट-सोभा सब जिय धरत।
कहूँ बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई,
उज्जल झलकत रजत-सीढ़ि मनु सरस सुहाई।
पिय के आगम हेतु पाँवड़े मनहुँ बिछाये,
रतन-रासि करि चूर कूल में मनु बगराये।

गीत

१

भरोसो रीझन ही लखि भारी !
हमहूँ को विश्वास होत है मोहन पतित उधारी ।
जो ऐसो सुभाव नहिं हो तो क्यों अहीर कुल भायो ,
तजि कै कौस्तुभ सो मनि गल क्यों गुंजा हार धरायो ।
कीट मुकुट सिर छोड़ि पखौआ मोरन को क्यों धार्‌यो ,
फेंट कसी टेंटिन पै मेवन को क्यों स्वाद बिसार्‌यो ।
ऐसो उलटी रीझ देखि कै उपजत है जिय आस ,
जग निन्दित हरिचन्दहु को अपनावहिंगे करि दास ।

२

गवनहु चरने को गिरधारी !
मोर मुकुट सिर पाग पेंच कसि राखहु अलक सँवारी ।
हिय हलकत बनमाल उठावहु मुरली धरहु उतारी ।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

गात सिहात तन लगत सीतल

रैन निद्रालस जन सुखद चंचल।

नेत्र सीस सीरे होत सुख पावै गात

आवत सुगन्ध लिये पवन प्रात।

नाचत आवत पात-पात हिहिनात

तुरंग चलत चाल पवन प्रभात।

आवै गुंजरत रस फूलन को लेत

प्रात कों पवन भौंर सोभा अति देत।

सौरभ को दान देत मुदित करत

दाता बन्यो प्रात-पौन देखो री चलत।

पराग को मौर दिये पच्छी बोल बाज

ब्याहन आवत प्रात-पौन चल्यौ आज।

आप देत थपकी गुलाब चुटकार

बालक खिलावै देखो प्रात की बयार।

जगावत जीव जग करत चैतन्य

प्रान-तत्त्व सम प्रात आवै धन्य धन्य।

विविध उपमा धुनि सौरभ को भौन

उड़त अकास कवि-मन किधौं पौन।

उड़त कपोत कहुँ काग करै रार

चुह चुह चिरैयन कीनो अति सोर।

× उद्‌बोधन

सीखत कोउ न कला उदर भरि जीवन केवल

पसु समान सब अन्न खात पीवत गङ्गा जल ।
धन विदेश चलि जात तऊ जिय होत न चंचल
जड़ समान ह्वै रहत अकल हत रचि न सकत कल ।
जीवत विदेश की वस्तु लै ता विन कछु नहिं कर सकत
जागो जागो अब साँवरे सब कोउ रुख तुमरो तकत !

श्रीधर पाठक

जीवनवृत्त—[आपका जन्म सम्वत् १९१६ में पंडित लीलाधर जी के घर हुआ। आप सारस्वत ब्राह्मण थे। सम्वत् १९८५ में आपका स्वर्गवास हुआ।]

हरिश्चन्द्र के सहयोगियों में काव्य-धारा को नवीन विषयों तथा प्रवृत्तियों की ओर मोड़ने की अकांक्षा का दर्शन तो होता है किन्तु भाषा ब्रजभाषा ही रही और छन्दों तथा भावों की प्राचीन प्रणाली भी बराबर चलती रही। अभिव्यञ्जना की नूतनता तथा प्रकृति-निरीक्षण की स्वाभाविकता का उद्घाटन श्रीधर पाठक ने किया। उन्होंने प्रकृति को रूढ़िबद्ध स्वरूपों से निकाल कर उसके सहज प्रत्यक्ष रूप को सामने रखा। 'गुनवंत हेमन्त' में ग्रामीण प्रकृति का बहुत ही सजीव चित्रण है। काव्य की सरस विषय-स्वच्छन्दता का प्रथम प्रतिपादन उनके काव्य में ही हुआ। पाठक ने ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों में कविताएँ लिखीं। खड़ी बोली की कविता के लिये उन्होंने छन्दों के नये ढाँचे तथा लय के अनुसार भाषा और भावों की नवीनता का उपयोग किया। 'स्वर्गीय वीणा' में अव्यक्त व्यापक सत्ता की ओर उन्होंने संकेत किया जिसके ताल पर यह सारा विश्व-अभिनय होता है। 'एकान्तवासी योगी' तथा 'श्रान्त पथिक' के अतिरिक्त उन्होंने खड़ी बोली की कुछ फुटकल कविताएँ भी लिखीं। उनकी कविता का विषय जीवन के समान ही विस्तृत एवं व्यापक है, समाज-सुधार, शिक्षा-प्रचार तथा देशोद्धार आदि सभी विषयों को उन्होंने अपने काव्य में अपनाया है। उनके

विषय-निरूपण में प्रासादिकता का बहुत ही सुन्दर आभास मिलता है। ब्रजभाषा के सवैयों की-सी मधुरता खड़ी बोली में लाने का उनका प्रयास स्तुत्य है। इनकी सम्पूर्ण रचनाओं में सुरुचि तथा सौन्दर्य का विशेष सम्मान पाया जाता है। प्रकृति की सुषमा का स्वाभाविक वर्णन इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। उनकी राष्ट्रीय कविताएँ भी बहुत अच्छी हैं। लखनऊ हिन्दी साहित्य सम्मेलन का उन्होंने सभापतित्व भी किया था। प्रयाग स्थित पद्मकोट नामक उनका बँगला उनके प्रकृति-प्रेम का उस समय प्रतीक बना था, इसमें सन्देह नहीं। उनकी मुख्य रचनाएँ हैं—एकान्तवासी योगी, श्रान्त पथिक, ऊजड़ ग्राम, काश्मीर सुषमा, देहरादून, जगत् सचाई, मनोविनोद, गोपिका गीत तथा भारत गीत। प्रथम तीन पुस्तकें अँग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के काव्यों का सुन्दर अनुवाद हैं। खड़ी बोली के प्रारम्भिक कवियों में पाठक जी अग्रगण्य हैं।

प्राकृतिक शोभा

प्रकृति इहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन-छिन धारति॥
बिमल-अम्बु-सर मुकुरन महँ मुख-बिम्ब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन मन वारति॥
चहुँ दिसि हिमगिरि-सिखर,हरित-मनि मौलि-अवलि मनु।
स्रवत सरित सितधार, द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु॥
फल फूलन छवि छटा छई जो बन उपवन की।
उदित भई मनु अवनि-उदर सों, निधि रतनन की॥

तुहिन-सिखर, सरिता, सर, बिपिनन की मिलि सो छवि ।
छई मंडलाकार, रही चारहुँ दिसि यों फवि ॥
मानहुँ मनिमय मौलि-माल-आकृति अलबेली ।
बाँधी विधि अनमोल गोल भारत सिर सेली ॥
अर्द्ध चन्द्र सम सिखर-स्रेनि कहुँ यों छवि छाई ।
मानहुँ चन्दन-धौरि, गौरि-गुरु, खौरि लगाई ॥
बहु विधि दृश्य अदृश्य कला कौशल सों छायौ ।
रच्छन निधि नैसर्ग मनहु विधि दुर्ग बनायौ ॥
अथवा विमल बटोर विश्व की निखिल निकाई ।
गुप्त राखिबे काज सुदृढ़ सन्दूक बनाई ॥
किधौं चढ़ायौ धाता ने भारत के मस्तक ।
माया - मालिनि - रच्यौ चारु कुसुमन कौ गुच्छक ॥
कामधेनु कै रवि - हय की खुर - छाप सलौनी ।
कै वसुधा पै सुधा-धार - महाद्रव - द्रौनी ॥
याकौं उपमा याही की मोहिं देत सुहावै ।
या सम दूजो ठौर सृष्टि मैं दृष्टि न आवै ॥
यहै स्वर्ग सुरलोक, यहै सुरकानन सुन्दर ।
यहि अमरन कौ ओक, यहीं कहुँ बसत पुरन्दर ॥
झरना जहँ तहँ झरत करत कल घर-घर जल रव ।
पियत जीव सो अंबु अमृत-उपमा हिम-संभव ॥
पवन सीत अति सुगंद सुभावत बहु विधि नाना ।
बादर दरसत, परसत, बरसत करहिं [illegible] ॥

कोई पुरन्दर की किंकरी है कि या किसी सुर की सुन्दरी है ।
वियोग तप्ता सी भोगमुक्ता हृदय के उद्गार गा रही है ॥
कभी नयी तान प्रेममय है, कभी प्रकोपन कभी विनय है ।
दया है दाक्षिण्य का उदय है अनेकों बानक बना रही है ॥
भरे गगन में हैं जितने तारे हुये हैं मदमस्त गत पै सारे ।
समस्त ब्रह्माण्ड भर को मानो दो उँगलियों पर नचा रही है ॥
सुनो तो सुनने की शक्ति वालो सको तो जाकर के कुछ पता लो ।
है कौन जोगन जो ये गगन में कि इतनी चुलबुल मचा रही है ॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

जीवनवृत्त—[आपकी ७०वीं वर्षगाँठ पर अभिनन्दन-ग्रंथ भेंट किया जा चुका है। आप हिन्दी के वयोवृद्ध कवियों में से हैं। आपका जन्म आजमगढ़ ज़िले के निज़ामाबाद गाँव में सम्वत् १९२२ में हुआ था।]

जिस प्रकार श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ने आधुनिक काल में रामकथा को अपने काव्य का विषय बनाया है उसी प्रकार उपाध्याय जी ने कृष्ण-कथा को अपनी काव्य-प्रतिभा का स्वरूप दिया है। भारतेन्दु के पीछे हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवि उपाध्याय जी ने नये विषयों को अपनाया। सम्वत् १९५७ के पहले वे बहुत सी फुटकल रचनाएँ उर्दू ढङ्ग पर कर चुके थे। जब द्विवेदी जी के प्रभाव से खड़ी बोली ने संस्कृत छन्दों और संस्कृत की पदावली का सहारा लिया, तब उपाध्याय जी ने, जो गद्य में अपनी भाषापटुता दिखला चुके थे, नयी शैली की ओर ध्यान दिया और फलस्वरूप सम्वत् १९७१ में अपना महाकाव्य 'प्रिय-प्रवास' प्रकाशित किया। इस काव्य में श्रीकृष्ण ब्रज के रक्षक नेता के रूप में दिखलाये गये हैं; यह सारा महाकाव्य संस्कृत वर्णवृत्तों में है। इस काव्य की भावव्यंजना और वर्णन बहुत सुन्दर है किन्तु इसकी कथावस्तु एक महाकाव्य के लिये अपर्याप्त है। भाषा का उपयोग करने में उपाध्याय जी का अधिकार अद्वितीय है। उनका 'वैदेही वनवास' उतनी सफल रचना नहीं हो सकी। उनका 'प्रियप्रवास' हिन्दी में युग-प्रवर्तक ग्रन्थ माना जाता है और उपाध्याय जी कवि-

सम्राट। जहाँ उन्होंने 'प्रियप्रवास' की रचना पूर्ण परिष्कृत संस्कृत शैली में की है वहाँ उन्होंने 'बोलचाल', 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' में अपनी सहज, स्वाभाविक और बोलचाल की मुहावरेदार भाषा में भी काव्य-रचना की है। यद्यपि ऐसी कविताएँ कवित्व-हीन हैं पर भाषा की स्वाभाविकता और बोधगम्यता सुरक्षित है। 'रसकलश' नामक ग्रन्थ से उपाध्याय जी के ब्रजभाषा प्रेम का भी परिचय मिलता है। सम्वत् १९६५ में उन्हें 'प्रियप्रवास' पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया है। अतुकान्त छन्दों की इतनी बड़ी रचना हिन्दी में अकेली है। उपाध्याय जी कठिन से कठिन और सरल से सरल दोनों प्रकार की गद्य-पद्य रचना करने में सिद्धहस्त हैं। खड़ी बोली तथा ब्रज-भाषा दोनों पर उनका बराबर अधिकार है। कविता के अतिरिक्त इन्होंने गद्य रचनाएँ भी की हैं। उपाध्याय जी के पहले केवल इंशा की 'रानी केतकी' की कहानी ठेठ हिन्दी में थी, इन्होंने 'ठेठ हिन्दी का ठाट' और 'अधखिला फूल' लिख कर इंशा के आदर्शों की वृद्धि की। ठेठ हिन्दी के गद्य का इन दोनों पुस्तकों में बहुत सुचारुता से उपयोग किया गया है। उपाध्याय जी कवि तथा आचार्य दोनों हैं।

प्रियप्रवास से

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला ?
तरु-शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा !

विपिन बीच विहंगम-वृन्द का
कल-निनाद समुत्थित था हुआ ;
ध्वनिमयी-विविधा विहगावली
उड़ रही नभ-मण्डल मध्य थी !
अधिक और हुई नभ लालिमा
दश-दिशा अनुरंजित हो गई ;
सकल पादप-पुञ्ज हरीतिमा
अरुणिमा विनिमज्जित-सी हुई !
अचल-शृंग-समुन्नत जा चढ़ी
किरन पादप-शीश विहारिणी ;
तरणि-बिम्ब तिरोहित हो चला
गगन पश्चिम-मध्य शनैः शनैः !

एक बूँद

ज्यों निकल कर बादलों की गोद से
थी अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी ;
सोचने फिर-फिर यही जी में लगी
आह क्यों घर छोड़कर मैं यों कढ़ी !
देव, मेरे भाग्य में है क्या बदा
मैं बचूँगी या मिलूँगी धूल में ;
या जलूँगी गिर अँगारे पर किसी
चू पड़ूँगी या कमल के फूल में !

बह गई उस काल एक ऐसी हवा
वह समुंदर ओर आई अनमनी ;
एक सुन्दर सीप का मुँह था खुला
वह उसी में जा पड़ी मोती बनी !
लोग योहीं हैं झिझकते सोचते
जब कि उनको छोड़ना पड़ता है घर ;
किन्तु घर का छोड़ना अक्सर उन्हें
बूँद लौं कुछ और ही देता है कर !

यशोदा-विलाप

प्रिय पति, वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है ?
दुख-जलनिधि-डूबी का सहारा कहाँ है ?
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ
वह हृदय हमारा नैन-तारा कहाँ है ?
पल-पल जिसके मैं पन्थ को देखती थी
निशि-दिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती ;
उर पर जिसके है सोहती मुक्तमाला
वह नव-नलिनी से नेत्रवाला कहाँ है ?
प्रतिदिन जिसको मैं अंक में नाथ ले के
निज सकल कुअंको की क्रिया कीलती थी ;
अति प्रिय जिसको है वस्त्र पीला निराला
वह किशलय के-से अंग वाला कहाँ है ?

वर वदन विलोके फुल्ल अम्भोज ऐसा
करतल-गत होता व्योम का चन्द्रमा था ;
मृदु रव जिसका है रक्त सूखी नसों का
वह मधुमयकारी मानसों का कहाँ है ?
खग-मृग जिसके थे गान से मत्त होते
तरुगण हरियाली भी महाद्भिव्य होती ;
पुलकित करती थी जो लता-वेलि सारी
उस कल मुरली का नादकारी कहाँ है ?
वन-वन फिरती हैं खिन्न गायें अनेकों
शुक भर भर आँखें मौन हो बैठता है
सुधि कर जिसकी है सारिका नित्य रोती
वह निधि-मृदुता का मंजु मोती कहाँ है ?
मधुपुर नगरी भी अल्पगामी यहाँ है
अतल सलिल में हो [illegible] [illegible] है
[illegible] [illegible] में मैं [illegible] सदा हूँ
[illegible] [illegible] बिछुड़े जो आज भी जी रही हूँ ।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

जीवनवृत्त—[इनका जन्म सम्वत् १९२३ में काशी में हुआ था। ये बहुत छोटी अवस्था से ही कविता करने लगे थे। बी० ए० पास करने के बाद इन्होंने एम० ए० में फारसी ली किन्तु परीक्षा न दे सके। ये अयोध्या नरेश तथा रानी के प्राइवेट सेक्रेटरी के रूप में बहुत दिनों तक रहे। 'रत्नाकर' का प्राचीन साहित्य का ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा था; इन्होंने अनेक प्राचीन ग्रन्थों का नवीन सम्पादन किया। बिहारी-सतसई की प्रामाणिक टीका भी इन्होंने लिखी। सम्वत् १९८८ में ये बीसवें हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति बनाये गये थे। सम्वत् १९८९ में इनकी मृत्यु हरिद्वार में हुई।]

भारतेन्दु के पीछे रत्नाकर ने सम्वत् १९४६ से ब्रजभाषा में कविता करना शुरू कर दिया था। ये ब्रजभाषा के आधुनिक सर्वोत्कृष्ट कवि माने जाते हैं। इनकी 'हिंडोला' नामक पुस्तक बहुत पहले निकल चुकी थी। एक पत्रिका भी इन्होंने निकाली थी। इनकी सूझ और उक्ति-वैचित्र्य की बड़ी प्रशंसा की जाती है। इन्होंने हरिश्चन्द्र, गंगावतरण तथा उद्धवशतक नामक तीन सुन्दर और सुबोध प्रबन्ध-काव्य लिखे हैं। पोप के आलोचना सम्बन्धी प्रसिद्ध काव्य (Essay on criticism) का रोला छन्दों में इन्होंने बहुत अच्छा अनुवाद भी किया है। शृंगार तथा वीर रस की इनकी बहुत सी फुटकल रचनाएँ भी हैं। इनकी रचनाओं का बहुत बड़ा संग्रह 'रत्नाकर' नाम से नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है। गंगावतरण में प्रकृति के नाना

रूपों का सुन्दर वर्णन है। उद्धवशतक की मार्मिकता और सरसता कवि की सहृदयता की स्पष्ट साक्षी है। ये व्रजभाषा के आधुनिक प्रतिनिधि कवि का स्थान सहज ही पा लेते हैं। इनकी भाषा में पद्माकरी भाषा की छटा है, किन्तु पुराने कवियों की भाषा से इनकी भाषा अधिक प्रवाह-पूर्ण और व्यवस्थित है। अपने काव्य-अनुभवों के प्रस्तुत करने में 'रत्नाकर' ने आधुनिक मनोविज्ञान का भी उपयोग किया है। 'रत्नाकर' जी कवि, दार्शनिक तथा रसिक व्यक्ति थे। ये व्रजभाषा-काव्य की परम्परा के अन्तिम ज्योति थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

कृष्ण

कहत गुपाल माल मंजु मनि, पुंजनि की
गुंजनि की माल की मिसाल छवि छावै ना।
कहै रतनाकर रतन-मै किरीट अच्छ
मोर-पच्छ-अच्छ-लच्छ अंसहू सु-भावै ना॥
जसुमति मैया की मलैया अरु माखन कौ
काम-धेनु-गोरस हू गूढ़ गुन पावै ना।
गोकुल की रज के कनूका और तिनूका सम
संपति त्रिलोक की विलोकन में आवै ना॥

गोपियों का उत्तर

कीजै ज्ञान भानु कौ प्रकास गिरि सृंगनि पै
ब्रज मैं तिहारी कला नैंकु सटिहैं नहीं।

कहै रतनाकर न प्रेमतरु पैहै सूखि
या को डार-पात तृन-तूल घटिहैं नहीं ॥
रसना हमारी चारु चातकी बनी है ऊधौ
पी-पी की बिहाइ और रट रटिहैं नहीं ।
लौटि पौटि बात कौ बवंडर बनावत क्यों
हिय तैं हमारे घनस्याम हटिहैं नहीं ॥
कर-बिनु कैसे गाय दूहिहै हमारी वह
पद-बिनु कैसे नाचि थिरकि रिझाइहै ।
कहै रतनाकर बदनु-बिनु कैसैं चाखि
माखन, बजाइ बेनु गोधन चराइहै ॥
देखि सुनि कैसैं दृग स्रवन बिनाहीं हाय
भोरे ब्रजवासिनि की बिपति बराइहै ।
रावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारे काम आइहै ॥

(उद्धव-शतक से)

बचनबद्ध त्रिपुरारि ताकि सन्नद्ध निहारत ।
दियौ ढारि विधि गंग-वारि मंगल उच्चारत ॥
चली विपुल-बल-वेग-बलित बाढ़ति ब्रह्मद्रव ।
भरति भुवन भय-भार मचावति अखिल उपद्रव ॥
निकसि कमंडल तैं उमंडि नभ मंडल खंडति ।
धाई धार अपार वेग सौं वायु विहंडति ॥

भयौ घोर अति शब्द धमक सौं त्रिभुवन तर्जे ।
महामेघ मिलि मनहु एक संगहिं सब गर्जे ॥
भरके भानु-तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके ।
हरके वाहन रुकत नैंकु नहिं विधि-हरि हर के ॥
दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय थरके ।
धुनि प्रतिधुनि सौं धमकि धराधर के उर धरके ॥
कढ़ि-कढ़ि गृह सौं विबुध विविध जाननि पर चढ़ि चढ़ि
पढ़ि-पढ़ि मंगल-पाठ लखत कौतुक कछु बढ़ि-बढ़ि
सुरसुन्दरी ससंक बंक दीरघ दृग कीने ।
लगीं मनावन सुकृत हाथ काननि पर दीने ॥
निज दुरेर सौं पौन-पटल फारति फहरावति ।
सुर-पुर के अति सघन घोर घन घसि घहरावति ॥
चली धार धुधकारि धरा दिसि काटति कावा ।
सगर-सुतनि के पाप ताप पर बोलति धावा ॥

मैथिलीशरण गुप्त

जीवनवृत्त—[आपका जन्म सम्वत् १९४३ में सेठ रामचरन जी के यहाँ चिरगाँव झाँसी में हुआ। आप अग्रवाल वैश्य हैं। आपके अनुज श्री सियारामशरण जी भी अच्छे कवि हैं।]

आधुनिक युग भक्ति का युग नहीं है फिर भी रामचरित के कतिपय मार्मिक प्रसंगों को लेकर खड़ी बोली में कुछ काव्य-ग्रन्थों की रचना हुई है। गुप्त जी राम-भक्ति के आधुनिकतम कवि हैं। 'सरस्वती' का संपादन द्विवेदी जी के हाथ में आने के प्रायः ३ वर्ष पीछे सम्वत् १९६३ से गुप्त जी की कविताएँ उसमें निकलने लगी थीं और बराबर निकलती रहीं। सम्वत् १९६६ में उनका 'रंग में भंग' नामक छोटा सा प्रबन्ध-काव्य निकला, तब से बराबर गुप्त जी का ध्यान प्रबन्ध-काव्यों की रचना की ओर आकर्षित रहा। 'भारतभारती' तथा 'जयद्रथवध' से गुप्त जी बहुत ही लोकप्रिय हो गये। सीधी-सादी भाषा और देश-प्रेम की ममता से पूर्ण होने के कारण 'भारतभारती' नवयुकों को बहुत प्रिय हुई, इसी ढंग पर इन्होंने 'हिन्दू' लिखा किन्तु उसे वह लोक-प्रियता नहीं मिली। गुप्त जी ने सब मिला कर करीब नौ या दस प्रबन्ध-काव्य लिखे—'रंग में भंग', 'जयद्रथवध', 'विकट भट', 'पलासी का युद्ध', 'गुरुकुल', 'किसान', 'पंचवटी', 'सिद्धराज', 'यशोधरा' और 'साकेत।' अन्तिम दो बड़े काव्य है, 'साकेत' तो महाकाव्य भी माना

जाता है। गुप्त जी के छोटे काव्यों की प्रसंग-योजना बहुत ही प्रभावपूर्ण है। इनकी भाषा सरल और साफ़ सुथरी है। भाषा में संस्कृत का पुट है किन्तु उसका विशेष आग्रह नहीं दीखता। मौलिक कृतियों के साथ-साथ गुप्त जी ने सुन्दर अनुवाद भी किये हैं। स्वभाव से गुप्त जी जीवन और जगत् के प्रत्यक्ष सत्य पर ही अपनी आस्था का आधार रखते हैं, पर उन्होंने छायावादी कवियों के साथ अनन्त का भी स्वर ऊँचा किया है। 'झंकार' में उनकी ऐसी ही कविताओं का संग्रह है किन्तु असीम के प्रति यह उत्कंठा गुप्त जी की अपनी चीज़ नहीं है क्योंकि वे तो रामभक्त कवि हैं। 'साकेत' में उर्मिला की विरह-वेदना और उसके हृदय की उदारता का बहुत ही मार्मिक चित्रण कवि ने किया है। गुप्त जी वास्तव में सामञ्जस्यवादी कवि हैं, प्राचीन के प्रति सम्मान और नवीन के प्रति स्वागत का भाव, दोनों इनमें पाया जाता है। उनके 'साकेत' महाकाव्य पर सम्वत् १९९३ में मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया है। इन्होंने 'चन्द्रहास' और 'तिलोत्तमा' जैसे नाटक भी लिखे हैं, पर इस ओर इन्हें अधिक सफलता नहीं मिली। मंगलघट में इनकी पुरानी कविताएँ संग्रहीत हैं। साहित्य की प्रगति में गुप्त जी ने सफलतापूर्वक सहयोग दिया है। वर्तमान हिन्दी कवियों में इनका स्थान बहुत ऊँचा है, हिन्दी के वे प्रतिनिधि कवि हैं। हिन्दी-साहित्य-संसार ने उनका सम्मान 'गुप्त जयन्ती' मनाकर और 'मैथिली-मान-ग्रन्थ' समर्पित कर किया है। आज भी वे हमारे साथ हैं। गुप्त जी की प्रतिभा वर्तमान काव्य-साहित्य में अद्वितीय है।

'यशोधरा' से

किलक अरे, मैं नेक निहारूँ,
इन दाँतों पर मोती वारूँ!

भर आया फूलों के मुँह में आज सबेरे,
हाँ, गोपा का दूध जमा है राहुल! मुख में तेरे!
लटपट चरण, चाल अटपट-सी मनभाई है मेरे,
तू मेरी अँगुली धर अथवा मैं तेरा कर धारूँ?
इन दाँतों पर मोती वारूँ!

आ, मेरे अवलम्ब, बता क्यों, 'अम्ब अम्ब' कहता है?
'पिता, पिता' कह बेटा, जिनसे घर सूना रहता है!
दहता भी है, बहता भी है, यह जी सब सहता है।
फिर भी तू पुकार, किस मुँह से हा! मैं उन्हें पुकारूँ?
इन दाँतों पर मोती वारूँ।

'साकेत' से

आँख, बता दे तू ही, हँसती या यथार्थ रोती है?
तेरे अधर-दशन ये, या तू भर अश्रु-बिन्दु ढोती है?
सखे, जाओ तुम हँसकर भूल, रहूँ मैं सुधि करके रोती।
तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती।
मानती हूँ, तुम मेरे साध्य,
अहर्निश एक मात्र आराध्य,
साधिका मैं भी किन्तु अबाध्य,
जागती होऊँ, या सोती!

सफल हो सहज तुम्हारा त्याग,
नहीं निष्फल मेरा अनुराग,
सिद्धि है स्वयं साधना-भाग,
सुधा क्या, क्षुधा जो न होती
काल की रुके न चाहे चाल,
मिलन से बड़ा विरह का काल,
वहाँ लय, यहाँ प्रलय सुविशाल!
दृष्टि में दर्शनार्थ धोती!
तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती।

मातृ-भूमि

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है;
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मंडन हैं;
बन्दीजन खग-वृन्द, शेष-फन सिंहासन हैं;
करते अभिषेक पयोद हैं,
बलिहारी इस वेष की!
हे मातृभूमि, तू सत्य ही
सगुण मूर्ति सर्वेश की!
निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन हर लेता श्रम है;
षड् ऋतुओं का विविध दृश्ययुत अद्भुत क्रम है;
हरियाली का फर्श नहीं मखमल से कम है;

मैथिलीशरण गुप्त

शुचि सुधा सींचता रात में
तुझ पर चन्द्र प्रकाश है,
हे मातृभूमि, दिन में तरणि
करता तम का नाश है!

सुरभित, सुन्दर, सुखद सुमन तुझ पर खिलते हैं,
भाँति-भाँति के सरस, सुधोपम फल मिलते हैं;
औषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली,
खानें शोभित कहीं धातुवर रत्नोंवाली;
जो आवश्यक होते हमें,
मिलते सभी पदार्थ हैं,
हे मातृभूमि, वसुधा-धरा
तेरे नाम यथार्थ हैं!

आते ही उपकार याद हे माता! तेरा,
हो जाता मन मुग्ध भक्ति-भावों का प्रेरा;
तू पूजा के योग्य, कीर्ति तेरी हम गावें;
मन होता है तुझे उठाकर शीश चढ़ावें;
वह शक्ति कहाँ, हा! क्या करें
क्यों हमको लज्जा न हो?
हम मातृभूमि, केवल तुझे,
शीश झुका सकते अहो!

माखनलाल चतुर्वेदी

जीवनवृत्त—[आपका जन्म सम्वत् १९४५ में खँडवा (मध्य प्रदेश) में हुआ। नार्मल पास करके कुछ दिनों तक आपने अध्यापन का कार्य भी किया है। आजकल 'कर्मवीर' का सम्पादन कर रहे हैं।]

माखनलाल ने राष्ट्रीयता को अपने काव्य की भाव-भूमि चुना है। 'एक भारतीय-आत्मा' के नाम से इन्होंने जितनी भी कविताएँ लिखी हैं वे सब राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत हैं। भाषा के विषय में ये बहुत ही स्वच्छन्द विचार रखते हैं। भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए हिन्दी, उर्दू किसी भी भाषा का मनमाना उपयोग इनके काव्य में पाया जाता है। इनकी देश-प्रेम की भावना बहुत ही व्यापक है। ये फूल की इच्छा भी उस पथ पर गिरने की बताते हैं जहाँ से देश-प्रेमी वीर अपना बलि-दान करने जा रहे हों। इनकी कविताओं में कहीं-कहीं रहस्यानुभूति भी मिलती है पर इस विषय की उद्भावना में ये उर्दू की परम्परा से प्रभावित मालूम पड़ते हैं। अपनी भावना के व्यक्तीकरण में वे कला-त्मकता को उतना स्थान नहीं देते जितना उसकी सहज अभिव्यक्ति को देते हैं। कहीं-कहीं इनकी शब्दावली बड़ी विचित्र सी हो जाती है। शुद्ध संस्कृत शब्दों के साथ फारसी तथा अरबी शब्दों का उपयोग करने में इन्हें कोई संकोच नहीं होता। देश-प्रेम तथा एक व्यापक अव्यक्त सत्ता के प्रति आत्म-निवेदन ही इनकी कविता के प्रिय विषय हैं। कभी कभी इनकी कविताएँ इतनी अस्पष्ट हो जाती हैं कि उनका समझना

बहुत कठिन हो जाता है। इसका कारण, उनकी अनेक विरोधी भावनाओं का बरबस सम्मेलन, होता है। माखनलाल राष्ट्रीय कवि के रूप में हिन्दी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं। इन्होंने राष्ट्रीयता के प्रति अपनी सक्रिय-ममता भी दिखलाई है क्योंकि इनकी बहुत सी कविताएँ जेल की चहारदीवारी के भीतर ही लिखी गई हैं। इनकी बहुत कम कृतियाँ पुस्तक रूप में सामने आई हैं।

काव्य—हिमकिरीटिनी।

नाटक—श्रीकृष्णार्जुन-युद्ध।

उद्योग-मन्दिर जबलपुर से प्रकाशित 'त्रिधारा' में इनकी कुछ कविताओं का संग्रह है। 'साहित्य-देवता' नामक गद्य-ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है।

घर मेरा है ?

क्या कहा, कि यह घर मेरा है ?

जिसके रवि ऊगें जेलों में,
सन्ध्या होवे वीराने में,
उसके कानों में क्यों कहने
आते हो ? यह घर मेरा है ?

है नील-चँदोवा तना कि झूमर
झालर उसमें चमक रहे,
क्यों घर की याद दिलाते हो;
जब सारा रैन बसेरा है ?

जब चाँद मुझे नहलाता है ,
सूरज रोशनी पिन्हाता है ,
क्यों दीपक लेकर कहते हो ,
यह तेरा है, यह मेरा है ?

फिर सनसनाट का ठाठ बना
आ गयी हवा, कजली-गाने
आ गयी रात, सौगात लिये
ये गुलसब्बो मासूम उठे !

इतने में कोयल बोल उठी ,
अपनी तो दुनिया डोल उठी ,
यह अन्धकार का तरल प्यार
सिसकें बन आयीं जब मलार ;

मत घर की याद दिलाओ तुम ,
अपना तो काला डेरा है ,
कलरव, बरसात, हवा ठंडी ,
मीठे दाने खारे मोती ,
सब कुछ ले, लौटाया न कभी ,
घर वाला महज लुटेरा है ।

हो मुकुट हिमालय पहनाता ,
सागर जिसके पद धुलवाता
यह बँधा बेड़ियों में मन्दिर
मसजिद गुरुद्वारा मेरा है ।

माखनलाल चतुर्वेदी

क्या कहा कि यह घर मेरा है ?

पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं, मैं सुरबाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ,

चाह नहीं, प्रेमी-माला में
बिंध प्यारी को ललचाऊँ,

चाह नहीं, सम्राटों के शव पर
हे हरि डाला जाऊँ,

चाह नहीं, देवों के शिर पर
चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।

मुझे तोड़ लेना बनमाली!
उस पथ में देना तुम फेंक

मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक

कृतियों की मनोरंजकता बढ़ाने में ये कभी असफल नहीं हुए। इनके व्यंग बहुत ही विनोदमय और उद्देश्यमय होते हैं। ये केवल कवि न होकर पूर्ण साहित्यिक व्यक्ति हैं। तुलसीदास और उनकी कविता के स्पष्टीकरण में इनके भीतर के भक्त और मस्तिष्क के विवेचक का बहुत ही सुन्दर सामञ्जस्य हुआ है। मानवता की सामान्य भूमि पर ही इनका साहित्य अपनी प्रगति पाता है। इनकी कृतियाँ बहुमुखी हैं।

काव्य—पथिक, मिलन, स्वप्न तथा मानसी।

नाटक—जयन्त, प्रेमलोक।

उपन्यास—लक्ष्मी, सुभद्रा।

कहानी—स्वप्नचित्र, तरकश।

बाल-साहित्य—बालकथा कहानी, मोहनमाला, नेता पहेली, कविता-विनोद, गुपचुप कहानियाँ, बताओ तो जाने।

इसके अतिरिक्त, कविता-कौमुदी, घाघभड्डरी, ग्रामगीत, सुकवि-कौमुदी, रत्नमाला, हिन्दी-पद्य-रचना आदि का सम्पादन तथा संग्रह किया है।

प्रयास-सिद्ध साहित्य-साधना में त्रिपाठी जी अनन्य हैं।

वसंत की विचार-धारा

१

अतिशय चपल, रजत तन उज्ज्वल,
निर्झर-गनदा के तट-पथ पर।
युवक वसंत भाव-भारान्वित,
[illegible]

विचरण में था निरत एक दिन,

मंद मंद धर चरण कोकनद ?

मानों द्रुम-दल-लसित शैल पर,

क्षीर - कांतिमय नूतन नीरद।

२

सोच रहा था भूतल पर यह

किसकी प्रेम-कथा है चित्रित ?

अम्बर के उर में किस कवि के

हैं गंभीर भाव एकत्रित ?

किसकी सुख-निद्रा का मधुमय

स्वप्न खण्ड है विशद विश्व यह ?

जग कितना सुन्दर लगता है

ललित खिलौनों का सा संग्रह ?

३

बार बार अंकित करता है

ऋतुओं में सविता किसकी छवि ?

मोहित होता है मन ही मन

देख देख किसकी क्रीड़ा कवि ?

है वह कौन, रूप का आकर

जिसके मुख की कान्ति मनोहर ?

देखा करती हैं सागर की

व्यग्र तरंगें उचक उचक कर ?

४

प्रातःकाल समीर कहाँ से,
उपवन में चुपचाप पहुँच कर ?
क्या सन्देश सुना जाता है,
घूम घूम प्रत्येक द्वार पर ?
फूलों के आनन अचरज से
खुल पड़ते हैं जिसे श्रवण कर,
थामे नहीं हँसी थमती है
मुँह मुँदते ही नहीं जन्म भर !

अन्वेषण

मैं ढूँढ़ता तुझे था जब कुंज और वन में ,
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में ।

तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था ,
मैं था तुझे बुलाता संगीत में, भजन में ।

मेरे लिये खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू ,
मैं देखता तुझे था माशूक के बदन में ।

दुख में रुला रुलाकर तू ने मुझे चिताया ,
मैं मस्त हो रहा था तब, हाय, अंजुमन में ।

बाजे बजाकर मैं था तुझे रिझाता ,
तब तू लगा हुआ था पतितों के संगठन में ।

मैं था विरक्त तुझसे जग की अनित्यता पर,
उत्थान भर रहा था तब तू किसी पतन में।

कठिनाइयाँ दुखों का इतिहास ही सुयश है,
मुझको समर्थ कर तू बस कष्ट के सहन में।

दुख में न हार मानूँ सुख में तुझे न भूलूँ,
ऐसा प्रभाव भर दे मेरे अधीर मन में।

जयशंकर 'प्रसाद'

जीवनवृत्त—[आपका जन्म सम्वत् १९४६ में काशी के एक सम्पन्न वैश्य परिवार में हुआ था। अल्पावस्था में ही आपने पितृ-स्नेह से वंचित होकर परिवार का भार सँभाला। घर ही में आपने संस्कृत, अंग्रेज़ी, उर्दू फारसी आदि का ज्ञान प्राप्त किया। सम्वत् १९९४ में आपका स्वर्गवास हुआ।]

'प्रसाद' का हिन्दी काव्य में प्रवेश काव्य की नवीन प्रगति की सूचना है। आधुनिक छायावादी कवियों में सब से अधिक गम्भीर और सांस्कृतिक व्यक्तित्व 'प्रसाद' जी का था। उन्होंने साहित्य के प्रायः सभी अंगों की श्रीवृद्धि की है। ये पहले ब्रजभाषा में कविता किया करते थे जिनका संग्रह 'चित्राधार' में हुआ है। सम्वत् १९७० से ये खड़ी बोली की ओर आये और 'काननकुसुम', 'महाराणा का महत्व', 'करुणालय' और 'प्रेमपथिक' प्रकाशित किया। श्रीधर पाठक द्वारा प्रयुक्त अतुकान्त रचना का इन्होंने परिष्करण किया। उनकी नूतन भावनाओं से भरी कविताएँ 'झरना' में संग्रहीत हैं। इसी पुस्तक से छाया-वादी विशेषताओं का स्फुट स्वरूप सामने आया। 'प्रसाद' जी ने अपनी प्रखर प्रतिभा और जागरूक भावुकता से इस नवीन काव्य-पद्धति का समुचित विकास किया और हिन्दी काव्य में अभिव्यञ्जना का अनूठापन और व्यञ्जक चित्रविधान का उद्घाटन किया। अपनी मधुमयी प्रवृत्ति के कारण प्रेम की अनेक चेष्टाओं का इन्होंने बहुत ही मनोरम चित्र खींचा है। उनकी सारी प्रणय-अनुभूति रहस्यात्मक है। इनकी

प्रथम विशिष्ट रचना 'आँसू' सम्वत् १६८८ में प्रकाशित हुई, जिसमें वेदना के व्यापक स्वरूप का सुन्दर स्पष्टीकरण है। इसमें भावनाओं की सुकुमारता, व्यञ्जना की चित्रमयता दर्शनीय है। प्रेम-वेदना की दिव्यता और सुख-दुःख को समान कर देने की उसकी क्षमता तथा सम्वेदनशील सौन्दर्यग्राहिणी शक्ति की महत्ता का इसमें प्रतिपादन है। 'आँसू' से लेकर 'कामायनी' तक कवि का यही सत् प्रयास है। 'आँसू' की प्रतिक्रिया 'लहर' में होती है, जो कई प्रकार की रचनाओं का संग्रह है। लहर का अभिप्राय कवि ने मानवीय चेतना के उस आनन्द-प्रवाह से निकाला है जो मनुष्य-मात्र के हृदय में प्रवाहित होकर उसके जीवन को सरसता देता रहता है। 'कामायनी' उनका अन्तिम महाकाव्य है। कविता, उपन्यास, नाटक और कहानी तथा समालोचना सभी कुछ इन्होंने बड़ी सफलता और मौलिकता से लिखा है। वे श्रेष्ठ कवि तथा नाटककार थे। उनके नाटकों के गीत बहुत ही सुन्दर हैं। स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, विशाख, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ और राज्यश्री उनके नाटक हैं, कंकाल, तितली उपन्यास तथा छाया, आकाशदीप, इन्द्रजाल, प्रतिध्वनि और आँधी कहानी-संग्रह हैं। सब कुछ लिखकर भी 'प्रसाद' प्रमुखतः कवि हैं। उनकी 'कामायनी' का स्थान हिन्दी साहित्य में रामचरितमानस के बाद दूसरा है। मानवता के कल्याण की जो सूझ कवि ने इस महाकाव्य में दी है वह मनुष्य मात्र की अपनी अमूल्य निधि है। 'कामायनी' की भव्य और विशाल भावना के भीतर जगत्व्यापी जीवन की सुचारुता का बहुत ही सरस साधनामय सन्देश मिलता है। 'प्रसाद' वास्तव में महाकवि थे।

गीत

अब जागो जीवन के प्रभात !

वसुधा पर ओस बने बिखरे
हिमकन आँसू जो क्षोभ भरे
ऊषा बटोरती अरुण गात !

अब जागो जीवन के प्रभात !

तम नयनों की तारायें सब—
मुँद रहीं किरणदल में हैं अब,
चल रहा सुखद यह मलयवात !

अब जागो जीवन के प्रभात !

रजनी की लाज समेटो तो,
कलरव से उठकर भेंटो तो,
अरुणांचल में चल रही वात !

जागो अब जीवन के प्रभात !

कामायनी से

"माँ"—फिर एक किलक दूरागत गूँज उठी कुटिया सूनी,
माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कंठा दूनी;
लुटरी खुली अलक, रज-धूसर बाँहें आकर लिपट गईं,
निशा तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी!
"कहाँ रहा नटखट! तू फिरता अब तक मेरा भाग्य बना!
अरे पिता के प्रतिनिधि, तूने भी सुख-दुख तो दिया घना;

चंचल तू, वनचर मृग बनकर भरता है चौकड़ी कहीं,
मैं डरती तू रूठ न जाये करती कैसे तुझे मना" ।
"मै रूठूँ माँ और मना तू, कितनी अच्छी बात कही ;
ले मैं सोता हूँ अब जाकर, बोलूँगा मैं आज नहीं ;
पके फलों से पेट भरा है नींद नहीं खुलने वाली ।"
श्रद्धा चुंबन ले प्रसन्न कुछ, कुछ विषाद से भरी रही ।

× × ×

अपने सुख दुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर ;
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुंदर ।
सब की सेवा न पराई
वह अपनी सुख-संसृति है ;
अपना ही अणु अणु कण कण
द्वयता ही तो विस्मृति है !
मैं की मेरी चेतनता
सब को ही स्पर्श किये सी ;
सब भिन्न परिस्थितियों की
है मादक घूँट पिये सी !
जग ले ऊषा के दृग में
सो ले निशि की पलकों में ;

हाँ स्वप्न देख ले सुन्दर
उलझन वाली अलकों में ।

चेतन का साक्षी मानव
हो निर्विकार हँसता सा ;
मानस के मधुर मिलन में
गहरे गहरे धँसता सा !

सब भेद भाव भुलवा कर
दुख सुख को दृश्य बनाता ;
मानव कह रे ! "यह मैं हूँ"
यह विश्व नीड़ बन जाता !

गोपालशरण सिंह

जीवनवृत्त—[आपका जन्म सम्वत् १९४८ में हुआ। रीवाँ राज्यांतर्गत नई गढ़ी का इलाका आप ही का है। अपनी साहित्य-प्रियता के कारण आप प्रयाग में प्रायः रहते हैं।]

इन्होंने उस समय काव्य-रचना प्रारम्भ की थी जिस समय खड़ी बोली की रूपरेखा निश्चित हो रही थी। भाषा का स्वरूप इनकी कविता में बराबर मँजता आया है। ठाकुर सा० की भाव-व्यञ्जना उतनी तीव्र नहीं जितनी सहज है। इनकी प्रथम रचना 'माधवी' है, जिसमें भावों के सुन्दर तथा सरल चित्र हैं। खड़ी बोली में घनाक्षरी छन्द की यह कोमलता इनकी देन है। इनकी कविताओं के विषय कल्पना की उड़ान से चुने हुए नहीं होते, वरन् जीवन तथा जगत् की प्रत्यक्ष स्थिति के माध्यम से लिये जाते हैं। इनकी कविताओं में भावना की भव्यता तथा हृदय की सरलता का बहुत ही सुथरा रूप पाया जाता है। कभी-कभी इन्होंने छायावादी काव्य-धारा को भी अपनाने की चेष्टा की है पर ऐसी रचनाओं में ये रहस्यदर्शी न होकर एक भक्त का व्याकुल उद्गार ही स्पष्ट कर पाते हैं। इनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता उसकी मनोरमता है। जीवन, प्रकृति तथा समाज के उपेक्षितों को इन्होंने अपने काव्य का आधार बनाया है। जीवन सम्बन्धी अपनी प्रेरणाओं की सरल अभिव्यक्ति में गोपालशरणसिंह सिद्धहस्त हैं। श्रीकृष्ण, व्रज, यमुना, उपेक्षिता, देवदासी, भिखारिनी, वारांगना आदि इनकी कविताएँ

अपनी सहज-सुषमा के साथ बड़ी ही सुन्दर बन पड़ी हैं। कविता के विषय में इनके ये विचार स्वयं इनके काव्य में प्रतिष्ठित हैं—

"सरस तो कविता को होना ही चाहिये, किन्तु उसे सरल भी होना चाहिये। रस उसका प्राण है तो सरलता उसका सबसे बड़ा गुण। सरलता के अभाव में सरसता भी मुँह छिपा लेती है।"

आपकी काव्य-कृतियाँ हैं—

माधवी, कादम्बिनी, मानवी, संचिता, ज्योतिष्मती। अभी आप बराबर साहित्य सेवा करते जा रहे हैं।

रूप-राशि

उसको विलोक लोक सुध-बुध खोता सदा,
होता उसे ऐसा मोद मन सम्मोहन है।
ज्यों ज्यों हम देखते हैं उसका अनूप रूप,
त्यों त्यों वह होता ज्ञात और रूपवान है।
जग में अनेक उपमान हैं प्रसिद्ध किन्तु,
कोई भी न छविमान उसके समान है।
होता चूर उसकी निराली चाह छवि देख,
लाखों अंशुमाली की प्रभाली का गुमान है।
उसको निहार छवि ने भी हार मान ली है,
कमनीय कञ्ज-कलियाँ हैं कुम्हलाई-सी।
क्षण क्षण ज्योति, क्षण-ज्योति की विलीन होती,
मानो उसे देख छिपती है शरमाई-सी।

गोपालशरण सिंह

लोल-लोल लहलही लताएँ
स्वर्णमयी सुकुमार ।
झुकी जा रही हैं ले तन में
नव-यौवन का भार ।
भ्रमर छूटकर पंकज-दल से
करने लगे विहार !
भानु-करों ने खोल दिया है
कारागृह का द्वार !
कल-किरणें हैं शयन-सदन की
मंजुल वंदनवार ।
सजनी रजनी की सुख-स्मृति ही
बस अब है आधार !

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

जीवनवृत्त—[आपका जन्म सम्वत् १९५४ में राजापुर (ग्वालियर) में हुआ। कानपुर क्राइस्ट-चर्च-कालेज में जब आप बी० ए० फाइनल में अध्ययन कर रहे थे उसी समय महात्मा गान्धी का असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। आपने तुरन्त कालेज छोड़कर उसमें भाग लिया और तब से बराबर देश-सेवा तथा साहित्य-सेवा कर रहे हैं।]

बालकृष्ण शर्मा सौन्दर्य तथा प्रेम के गायक हैं। जीवन में इन्होंने देश-सेवा का साहसपूर्ण व्रत लिया है, और कुछ सुन्दर राष्ट्रीय गीत भी लिखे हैं। इनका प्रेम कभी-कभी अध्यात्म की ऊँचाई पर भी पहुँच जाता है परन्तु अधिक आस्था इनकी सहज मानवीय प्रेम की ही ओर है। 'नवीन' की भावधारा छायावादी कवियों की तरह सुकुमार नहीं पर उसमें पुरुषोचित ओज का शक्तिशाली स्वरूप अवश्य है। इनकी भाषा माखनलाल जी की भाषा से भी अधिक अव्यवस्थित है। वीरता, कर्मठता तथा प्रेम की कोमलता के संतुलित समन्वय से नवीन का व्यक्तित्व बना है। देश की दुर्दशा पर 'भैरव हुंकार' लिखनेवाला कवि अपनी 'प्रियतमा के प्रति' इतना कोमल और भावुक बन जाता है कि आश्चर्य होता है। कवि की देश-भक्ति में भी उसकी सौन्दर्यानुभूति दूध में मक्खन की तरह व्याप्त रहती है। एक सच्चे सिपाही की भाँति 'नवीन' जी कभी-कभी अपनी प्रेमाभिव्यक्ति में स्थूलता की साधारण सीमा तक पहुँच जाते हैं किन्तु देश के सेनानी की आज्ञा से फिर सेवा का कोमल तथा सूक्ष्म

आदर्श ग्रहण करने में कभी नहीं चूकते। ये अपनी राष्ट्रीय-भावना की सक्रियता में नवीन साहित्यिकों में सब से आगे हैं।

आप कवि, वक्ता, नेता तथा सुयोग्य साहित्यकार हैं। इनकी बहुत-सी स्फुट रचनाएँ इधर-उधर पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं परन्तु अभी सब पुस्तक रूप में नहीं आईं।

काव्य—विस्मृता उर्मिला, कुमकुम।

विप्लव-गायन

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ—जिससे उथल-पुथल मच जाये,
एक हिलोर इधर से आये—एक हिलोर उधर से आये,
प्राणों के लाले पड़ जाएँ, त्राहि त्राहि रव नभ में छाये,
नाश और सत्यानाशों का धुँआधार जग में छा जाये,
बरसे आग, जलद जल जाये, भस्मसात भूधर हो जाये,
पाप-पुण्य सद्सद् भावों की धूल उड़ उठे दायें बायें,
नभ का वक्षस्थल फट जाये, तारे टूक टूक हो जायें,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये।

माता की छाती का अमृतमय पय कालकूट हो जाये,
आँखों का पानी सूखे वे शोणित की घूँटें हो जायें,
एक ओर कायरता काँपे गतानुगति विगलित हो जाये,
अंधे मूढ़ विचारों की वह अचल शिला विचलित हो जाये,
और दूसरी ओर कँपा देने वाला गर्जन उठ धाये,

अंतरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मँडराये
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये

नियम और उपनियमों के ये बन्धन टूक-टूक हो जायें,
विश्वम्भर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जायें,
शान्ति दण्ड टूटे—उस महारुद्र का सिंहासन थर्राये,
उसकी पोषक श्वासोच्छ्वास विश्व के प्रांगण में घहराये,
नाश ! नाश ! हा महानाश ! की प्रलयंकरी आँख खुल जाये,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये !

सावधान मेरी वीणा में चिनगारियाँ आन बैठी हैं,
टूटी हैं मिजराबें युगलांगुलियाँ ये मेरी ऐंठी हैं,
कंठ रुका जाता है महानाश का गीत रुद्ध होता है,
आग लगेगी क्षण में हृत्तल में अब क्षुब्ध युद्ध होता है,
झाड़ और झंखाड़ व्याप्त है—इस ज्वलन्त गायन के स्वर से,
रुद्ध गीत की क्षुब्ध तान निकली है मेरे अन्तरतर से !
कण-कण में है व्याप्त वही स्वर रोम-रोम गाता है वह ध्वनि,
वही तान गाती रहती है कालकूट फणि की चिन्तामणि,
जीवन ज्योति लुप्त है अहा ! सुप्त है संरक्षण की घड़ियाँ,
लटक रही हैं प्रतिपल में—इस नाशक संभक्षण की लड़ियाँ,
चकनाचूर करो जग को—गूँजे ब्रह्मांड नाश के स्वर से,
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान निकली है मेरे अन्तरतर से !

दिल को मसल मसल मेंहदी रचता आया हूँ म [illegible],
एक एक अंगुलि परिचालन में नाशक ताण्डव को पेखो,
विश्व-मूर्ति हट जाओ यह बीभत्स प्रहार सहे न सहेगा,
टुकड़े टुकड़े हो जाओगी नाश मात्र अवशेष रहेगा!

आज देख आया हूँ जीवन के सब राज़ समझ आया हूँ,
भ्रू-विलास में महानाश के पोषक सूत्र परख आया हूँ,
जीवन-गीत भुला दो—कंठ मिला दो मृत्यु-गीत के स्वर से,
रुद्र गीत की क्रुद्ध तान निकली है मेरे अन्तर-तर से॥

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

जीवनवृत्त—[कवि 'निराला' का जन्म सम्वत् १९५५ में महिषादल स्टेट, बंगाल में हुआ। घर ही में आपने बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी आदि का अध्ययन किया। दर्शन के भी आप अच्छे ज्ञाता हैं।]

कवि का पोषण बंग-संस्कृति में हुआ है, स्वभावतः वहाँ की कला का इनमें असत्यन्त प्रभाव परिलक्षित होता है। जिस प्रकार माइकेल मधुसूदन दत्त ने 'मेघनादवध' लिखकर बंग-साहित्य को आन्दोलित कर दिया था उसी प्रकार 'निराला' ने अपने मुक्त छन्द की प्रभाव-पूर्ण उद्भावना से हिन्दी साहित्य को संचरणशील किया है। यह कवि हिन्दी का दार्शनिक कवि है, अद्वैतवाद की जटिल और संस्कृतमयी विचार-धारा का सरल-सहज प्रकाशन इनकी कविता में बड़ी ही रम-णीयता और कुशलता से हुआ है। इनके भावों की व्यञ्जना बड़ी ही विशद और महत्वपूर्ण होती है। कवि की सौंदर्य-दृष्टि बड़ी व्यापक और सूक्ष्म है। इन्होंने पार्थिव तथा अपार्थिव दोनों के उत्तम और स्वच्छ शब्द-चित्र हिन्दी को दिये हैं। भाषा तथा भावों की मुक्ति के लिये मुक्त छंद की देन 'निराला' की प्रतिभा का अद्वितीय उदाहरण है। जीवन, जगत और प्रकृति के अनेक चित्र अपनी अन्तर्भावना के सामञ्जस्य से कवि ने अपने काव्य में सजाये हैं, जिनके लिये हिंदी साहित्य उनका चिर ऋणी रहेगा। 'निराला' की प्रतिभा बहुमुखी है। इन्होंने काव्य, उपन्यास, कहानी, समालोचना और निबंध आदि सभी विषयों पर

सफलतापूर्वक अपनी प्रतिभा का प्रसार किया है। गीत-रचना में वे बेजोड़ हैं, क्योंकि गीतों में 'निराला' के भाव-भाषा सभी गीतात्मक स्वरूप पा लेते हैं। कवि की विविधतामयी कला अपनी मौलिकता और सौंदर्य-शुचिता में सबसे आगे है। कवि के व्यक्तित्व तथा साहित्य में करुणा के लिए मर्मस्पर्शी स्थान है, शायद इसीलिए आधुनिक कवियों में उनका व्यक्तित्व सबसे अधिक प्रभावशाली है। कवि के ग्रंथ—

काव्य—अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता तथा अणिमा।

उपन्यास—अप्सरा, अलका तथा निरुपमा।

कहानी-संग्रह—लिली, सखी।

जीवनी—कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा, शुकुल की बीबी।

निबन्ध—प्रबंध-पद्म, प्रबंध-प्रतिमा।

आलोचना—रवीन्द्र कविता कानन।

इनके अतिरिक्त अभी उनकी बहुत सी रचनाएँ अप्रकाशित हैं। इन्होंने अनुवाद का भी पर्याप्त कार्य किया है। ये बराबर अपने साहित्य-सृजन में संलग्न हैं। अभी हिन्दी-साहित्य का भांडार ये अपनी कृतियों से भरते रहेंगे, ऐसा विश्वास है। 'निराला' जैसी कुशल और कर्मठ प्रतिभा किसी भी साहित्य को गौरवान्वित करने में समर्थ है। 'निराला' वास्तव में युग-प्रवर्तक कवि हैं।

सन्ध्या सुन्दरी

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है

वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे,
तिमिराञ्चल में चञ्चलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर,
किन्तु जरा गम्भीर—नहीं है उनमें हास-विलास !
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले काले बालों से,
हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह,
छाँह सी अम्बर पथ से चली।
नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा,
नहीं होता कोई अनुराग-राग-आलाप,
नूपुरों में भी रुनझुन रुनझुन रुनझुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप चुप चुप" !
है गूँज रहा सब कहीं !

विधवा

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी,

वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन—
दलित भारत की विधवा है।
षड्ऋतुओं का शृंगार,
कुसुमित कानन में नीरव पद-संचार,
अमर कल्पना में स्वच्छन्द विहार—
व्यथा की भूली हुई कथा है
उसका एक स्वप्न अथवा है।
उसके मधु सुहाग का दर्पण,
जिसमें देखा था उसने
बस, एक बार बिम्बित अपना जीवनधन,
अबल हाथों का एक सहारा—
लक्ष्य-जीवन का प्यारा—वह ध्रुवतारा—
दूर हुआ वह बहा रहा है
उस अनन्त पथ से करुणा की धारा!
हैं करुणा-रस से पुलकित आँखें;
देखो तो भीगीं मन मधुकर की पाँखें,
रसावेश में निकला जो गुंजार
वह और न था कुछ, था बस हाहाकार।
करुणा की सरिता के मलिन पुलिन पर,
टूटी हुई कुटी का मौन बढ़ाकर
छिन्न हुए भीगे अञ्चल में मन को—
रूखे सूखे अधर त्रस्त चितवन को

दुनिया की नजरों से दूर बचाकर
वह रोती अस्फुट स्वर में;
सुनता है आकाश धीर निश्चल समीर—
सरिता की वे लहरें भी ठहर ठहर कर !

गीत

मेरे प्राणों में आओ !
शत शत, भावनाओं के
उर के तार सजा जाओ !
गाने दो प्रिय मुझे भूलकर
अपनापन-अपार जग सुन्दर,
खुली करुण उर की सीपी पर
स्वाती-जल नित बरसाओ !
मेरी मुक्ताएँ प्रकाश में
चमकें अपने सहज हास में,
उनके अचपल भ्रू-विलास में
लास-रङ्ग-रस सरसाओ !
मेरे स्वर की अनल-शिखा से
जला सकल जग जीर्ण दिशा से,
हे अरूप नव रूप विभा के
चिर स्वरूप पाके जाओ !

सुमित्रानन्दन पन्त

जीवनवृत्त—[पन्त का जन्म अलमोड़ा के कौसानी नामक गाँव में सम्वत् १९५८ में स्व० गंगादत्तजी पन्त के यहाँ हुआ। जन्म के उपरान्त ही माता का देहान्त हो जाने के कारण आप मातृस्नेह से वंचित रहे। अल्मोड़ा में अध्ययन करने के उपरान्त आपने हाई स्कूल की परीक्षा बनारस से पास की। प्रयाग में अध्ययन करते समय सत्याग्रह से प्रभावित होकर कालेज छोड़ दिया।]

पन्त हिन्दी में प्रकृति के सब से कोमल कवि हैं। खड़ी बोली के परुष रूप को कोमल कान्तपदावली बनाने का बहुत कुछ श्रेय पन्त के कवि को है। इनका शब्द-चयन इतना भावानुगामी है कि शब्द की ध्वनि से ही भावना का चित्र साकार सा हो जाता है। इनकी उपमाएँ नवीन और व्यञ्जनामय हैं जो इनकी शैली की सब से बड़ी विशेषता है। प्रकृति के नाना रहस्यों का भावुकतामय उद्घाटन पन्त की अपनी खास चीज़ है। जीवन और साहित्य दोनों में ये प्रकृति के स्नेही सहचर हैं। इनके काव्य में अनुभूति की तीव्रता की अपेक्षा कल्पना की कमनीयता का आधिक्य है। पन्त के पहले लोग कल्पना की उस सजीवता तथा साकारता की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। इधर पन्त ने जीवन की वास्तविकता को अपनी काव्य-ममता दी है, किन्तु अभी इस शैली के विषय में कुछ निर्णय नहीं दिया जा सकता क्योंकि यह उनका जीवन-संघर्ष में प्रवेश मात्र है। इस प्रकार की रचनाओं में भावों की व्यञ्जना और गति तो है पर भाषा कुछ कठिन-सी हो गई है। भाषा का परिष्करण और

स्वस्थ संस्कार हिन्दी को पन्त की अमर देन है, इसमें कोई सन्देह नहीं। पन्त ने कविता के अलावा नाटक और कहानियाँ भी लिखी हैं पर इस ओर उनकी विशेष रुचि का पता नहीं चला। पन्त के ग्रन्थ हैं—

काव्य—पल्लव, वीणा, ग्रन्थि, गुञ्जन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या और पल्लविनी।

नाटक—ज्योत्स्ना।

कहानी-संग्रह—पाँच कहानियाँ।

अभी पन्त को बहुत कुछ लिखना है, ये बराबर इस ओर प्रयत्नशील हैं। पन्त की प्रतिभा का आधुनिक काव्य-साहित्य को गर्व है। प्रसन्नता की बात है कि काल्पनिक सौन्दर्य और प्रयाससिद्ध रहस्यात्मकता को छोड़कर वे जीवन की प्रत्यक्ष गति-विधि की ओर उन्मुख हुए हैं। यदि पन्त अपने जीवन और स्वभाव की कोमलता से जीवन की इस व्यापक जटिलता का सामञ्जस्य कर सकें तो उनके काव्य से विश्व-कल्याण की भावनायें फूट निकलेंगी और यही उनकी प्रतिभा का सुदृढ़ प्रकाश-स्तम्भ होगा।

शिशु

कौन तुम अतुल, अरूप, अनाम !
अये अभिनव, अभिराम !
मृदुलता ही है बस आकार !
मधुरिमा-छवि, शृंगार ;
न अंगों में है रंग, उभार,
न मृदु उर में उद्गार ;

निरे साँसों के पिंजर द्वार !
कौन हो तुम अकलंक अकाम ?

न अपना ही न जगत का ज्ञान ,
न परिचित हैं निज नयन, न कान;
दीखता है जग कैसा तात !
नाम, गुण, रूप अजान ?

तुम्हीं सा हूँ मैं भी अज्ञात ,
वत्स ! जग है अज्ञेय महान !

उषा-वंदना

तुम नील वृन्त पर नभ के जग ,
उषे ! गुलाब सी खिल आई ।
अलसाई आँखों में भर कर
जग के प्रभात की अरुणाई ।

लिपटी तुम तरुण अरुण उर से
लज्जा लाली की सी झाई ।
भू पर उस स्नेह मधुरिमा की
पड़ती सखि, कोमल परछाईं !

तुम जग की स्वप्न शिराओं में
नव जीवन रुधिर सदृश छाई
मानस में सोई भावों की
ज्यों, अखिल अमल छवि मुसकाई !

आशाऽऽकांक्षा के कुसुमों से
जीवन की डाली भर जाई,
जग के प्रदीप में जीवन की
लौ सी उठ, नव छवि फैलाई!

गीत

तप रे मधुर मधुर मन!
विश्व वेदना में तप प्रतिपल,
जग जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल,
तप रे विधुर विधुर मन!
अपने सजल स्वर्ण से पावन
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,
स्थापित कर जग में अपनापन,
ढल रे ढल आतुर मन!
तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन,
गंधहीन तू गंधयुक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप, मन।
मूर्तिमान बन, निर्धन।
गल रे गल निष्ठुर मन!

मानव-स्तव

न्योछावर स्वर्ग इसी भू पर;
देवता यही मानव शोभन,

अविराम प्रेम की बाँहों में
है मुक्ति यही जीवन-बंधन !

है रे न दिशावधि का मानव,
वह चिर पुराण, वह चिर नूतन,
मानव के हैं सब जाति, वर्ण,
सब धर्म, ज्ञान, संस्कृति, बल, धन !

मृन्मय प्रदीप में दीपित हम
शाश्वत प्रकाश की शिखा सुषम,
हम एक ज्योति के दीप अखिल,
ज्योतित जिससे जग का आँगन।

हम पृथ्वी की प्रिय तारावलि
जीवन वसंत के मुकुल, सुमन;
सुरभित सुख से गृह गृह, उपवन,
उर उर में पूर्ण प्रेम मधु घन !

सुभद्राकुमारी चौहान

जीवनवृत्त—[इनका जन्म सम्वत् १९६१ में हुआ। १५ वर्ष की आयु में आपका विवाह खंडवा निवासी ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान बी० ए० एल-एल० बी० के साथ हुआ। तब से दम्पति राष्ट्र के कार्य में लगे हुए हैं।]

सर्वप्रथम सुभद्राकुमारी की कविताएँ 'कर्मवीर' के द्वारा साहित्य-संसार को प्राप्त हुईं। इन कविताओं में सरलता और स्वाभाविकता का वैसा ही सम्बन्ध था जैसा माँ और वात्सल्य का। प्रौढ़ता की प्रखरता जीवन के साथ बढ़ती गई। सुभद्राकुमारी की रचनाओं में नारी मनोविज्ञान का बहुत ही सरस और सुन्दर प्रस्फुटन हुआ है। ये जीवन में एक सफल और कुशल माँ हैं और उनकी कृतियाँ उनके पारिवारिक जीवन की महिमामयी कृतियाँ हैं। गार्हस्थ्य जीवन के अनुकूल सुख-दुःख की भावना उनकी कविताओं में अपना सहज स्वरूप पा लेती है। इन्होंने राष्ट्रीय रचनाएँ भी की हैं, केवल कविता ही में नहीं, जीवन में भी इन्होंने राष्ट्र की पुकार का क्लेशमय समर्थन किया है। उनकी अनेकों जेलयात्राएँ इस बात का उज्ज्वल प्रमाण हैं। एक वीर क्षत्राणी की भाँति इन्होंने ओजपूर्ण भाषा में देश का गौरव-गीत गाया है। इनकी कविता 'झाँसीवाली रानी' अपनी भावना में अकेली और देशप्रेमियों के कंठ का हार है। इनके काव्य में कल्पना की अपेक्षा जीवन की सहज-सरल अनुभूति की सरसता और प्रवाह है। जीवन और साहित्य का ऐसा संतुलित सामञ्जस्य इस युग में अन्यत्र नहीं मिलता। सुभद्राकुमारी ने

कहानियाँ भी लिखी हैं। काव्य और कहानी दोनों में इन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सेकसरिया पुरस्कार मिल चुका है। सुभद्राकुमारी का स्वदेश-प्रेम इनकी नारी-शक्ति से मिलकर बहुत ही प्रभावपूर्ण हो उठा है क्योंकि जीवन की सचाई इनके साहित्य की सब से बड़ी शपथ है। 'मुकुल' इनका काव्य-संग्रह तथा 'बिखरे मोती' और 'उन्मादिनी' इनकी कहानियों के संग्रह हैं। इधर सुभद्राकुमारी गृह-कार्य की व्यस्तता के कारण साहित्य को बहुत थोड़ा समय दे पाती हैं, फिर भी साहित्य-सेवा का इनको शौक़ है, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता।

वीरों का कैसा हो वसंत ?

आ रही हिमांचल से पुकार,
है उदधि गरजता बार बार,
प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगन्त,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

फूली सरसों ने दिया रंग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वधु-वसुधा पुलकित अंग-अंग,
हैं वीर वेश में किन्तु कंत
वीरों का कैसा हो वसंत ?

गल बाहें हों, या हो कृपाण,
चल चितवन हो, या धनुष-बाण,
हो रस-विलास या दलित-त्राण,

अब यही समस्या है दुरंत
वीरों का कैसा हो वसंत ?

भर रही कोकिला इधर तान,
मारू बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान,
मिलने आए हैं आदि-अंत
वीरों का कैसा हो वसंत ?

कह दे अतीत अब मौन त्याग
लंके ! तुझमें क्यों लगी आग,
ऐ कुरुक्षेत्र ! अब जाग, जाग
बतला अपने अनुभव अनंत
वीरों का कैसा हो वसंत ?

हल्दीघाटी के शिलाखण्ड,
ऐ दुर्ग ! सिंहगढ़ के प्रचण्ड,
राणा, ताना का कर घमण्ड,
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

भूषण अथवा कवि चन्द नहीं,
बिजली भर दे वह छन्द नहीं,
है क़लम बँधी स्वच्छन्द नहीं,
फिर हमें बतावे कौन हंत
वीरों का कैसा हो वसंत ?

मेरा नया बचपन

बार बार आती है मुझको मधुर याद बचपन तेरी ।
गया ले गया तू जीवन की सबसे मस्त खुशी मेरी ॥
चिंता रहित खेलना खाना वह फिरना निर्भय स्वच्छन्द ।
कैसा भूला जा सकता है बचपन का अतुलित आनन्द ॥
ऊँच नीच का ज्ञान नहीं था छुआछूत किसने जानी ।
बनी हुई थी, अहा ! झोपड़ी और चीथड़ों में रानी ॥
रोना और मचल जाना भी क्या आनन्द दिखाते थे ।
बड़े बड़े मोती से आँसू जयमाला पहिनाते थे ॥
दादा ने चंदा दिखलाया नेत्र-नीर द्रुत दमक उठे ।
धुली हुई मुस्कान देखकर सब के चेहरे चमक उठे ॥
आजा बचपन एक बार फिर दे दे अपनी निर्मल शांति ।
व्याकुल व्यथा मिटाने वाली वह अपनी प्राकृत विश्रांति ॥
वह भोली-सी मधुर सरलता वह प्यारा जीवन निष्पाप ।
क्या फिर आकर मिटा सकेगा तू मेरे मन का संताप ॥
मैं बचपन को बुला रही थी बोल उठी बिटिया मेरी ।
नन्दन वन-सी फूल उठी वह छोटी सी कुटिया मेरी ॥
'माँ-ओ'—कहकर बुला रही थी मिट्टी खाकर आई थी ।
कुछ मुँह में कुछ लिये हाथ में मुझे खिलाने आई थी ॥
पुलक रहे थे अंग, दृगों में कौतूहल था छलक रहा ।
मुँह पर थी आह्लाद-लालिमा विजय-गर्व था झलक रहा ॥
मैंने पूछा,—यह क्या लाई ? बोल उठी वह—माँ काओ ।
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से मैंने कहा—तुम्हीं खाओ ॥

इतिहास भी इन्होंने लिखा है। कबीर के काव्य की समालोचना भी की है। इनके ग्रन्थ हैं—

काव्य—चितौड़ की चिता, अंजलि, रूपराशि, चित्ररेखा, चन्द्र-किरण और निशीथ।

नाटक—पृथ्वीराज की आँखें, १८ जुलाई की शाम, रेशमी टाई, और चारुमित्रा।

समालोचना—साहित्य-समालोचना, कबीर का रहस्यवाद, हिन्दी साहित्य का इतिहास।

इनके अध्ययन और अध्यापन के साथ इनका साहित्य-सृजन भी चल रहा है, साहित्य-सौन्दर्य की सात्विकता के ये सच्चे उपासक हैं।

चन्द्रकिरण से—

१

करुणा की आर्द्र छाया !
कोकिल ने कोमल स्वर भर
कुञ्जों-कुञ्जों में गाया !
जब विश्व व्यथित था; तुमने
अपना सन्देश सुनाया,
नर के सूने से तन में
नव जीवन बनकर आया !
[illegible] साँसों पर जीवन
कितनी ही बार झुलाया ;

मैं तुम में प्रतिबिम्बित होऊँ
तुम मुझमें होना ओ अनूप !

अञ्जलि से—

अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर !
इस एकान्त प्रान्त-प्राङ्गण में
किसे सुनाते सुमधुर स्वर ?
अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर !

अपना ऊँचा स्थान त्याग कर,
क्यों करते हो अधः पतन ?
कौन तुम्हारा वह प्रेमी है,
जिसे खोजते हो वन-वन ?
विरह-व्यथा में अश्रु बहाकर,
जलमय कर डाला सब तन !
क्या धोने को चले स्वयं,
अविदित प्रेमी के पद-रज-कन ?
लघु पाषाणों के टुकड़े भी,
तुमको देते हैं ठोकर !
क्षण भी ही विचलित होकर,
कम्पित होते हो गति खोकर।
लघु लहरों के कम्पित कर से,
करते उत्सुक आलिंगन।

कौन तुम्हें पथ बतलाता है,
मौन खड़े हैं सब तरुगान ?
अविचल चल, जल का छल-छल,
गिरि पर गिर-गिर कर कल-कल स्वर !
पल पल में प्रेमी के मन में
गूँजे ए कातर निर्झर !
अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर !

महादेवी वर्मा

जीवनवृत्त—[इनका जन्म सम्वत् १९६४ में फरुखाबाद में हुआ। आज-कल आप प्रयाग महिला-विद्यापीठ में प्रिन्सपल हैं।]

आधुनिक कवियों में जिस प्रकार पन्त को भाषा के परिष्कार का श्रेय है उसी प्रकार महादेवी को भावना के परिष्करण का श्रेय है। अपने सम्पूर्ण काव्य में महादेवी ने करुणा का जो शृंगार किया है वह अन्य किसी कवि से नहीं बन पड़ा। आध्यात्मिक विरह इनके काव्य का मूल आधार है। इस बुद्धिवादी भौतिकता-प्रधान युग में महात्मा गांधी की भाँति महादेवी की आस्था अद्वितीय है। अपनी जीवन की शुचिता तथा हृदय की सहृदयता से इन्होंने काव्य में सार्वजनीन भावना का अत्यन्त मर्मस्पर्शी उद्घाटन किया है। जीवन-व्यापी सत्य का अन्वेषण, करुणा की कोमलता तथा कल्पना की कमनीयता से इनका काव्य प्रोज्ज्वल है। जीवन के सुख-दुःख का दार्शनिक स्वरूप उनकी आध्यात्मिकता का सुदृढ़ साथी है। एक साधिका की भाँति ये अखिल विश्व को सत्य, स्नेह तथा करुणा का सन्देश देने में सतत् प्रयत्नशील हैं। अपने जीवन के उषःकाल में इन्होंने कुछ राष्ट्रीय कविताएँ भी लिखी हैं किन्तु बाद में समाज तथा राष्ट्र की सीमित भावनाओं को छोड़ कर ये काव्य की विश्व-व्यापक विस्तृत प्रगति की ओर उन्मुख हो गईं। अपनी काव्य-सीमा में महादेवी मीरा से भी आगे हैं, क्योंकि मीरा का सत्य केवल कृष्ण के स्वरूप में निहित था किन्तु महादेवी का सत्य विश्व

के कण-कण में व्याप्त है। भावना की तन्मयता में महादेवी की अभिव्यक्ति बहुत व्यापक और सजीव हो उठती है। काव्योचित रहस्यवाद की ये एकमात्र सफल कवियित्री हैं। आध्यात्मिक अनुभूति की आकुलता में करुणा के माध्यम से महादेवी ने दुख को भी सुख का स्वरूप दे दिया है। काव्य के अतिरिक्त इन्होंने गद्य भी लिखा है।

कवियित्री के साथ-साथ आप एक सफल चित्रकर्त्री भी हैं। आपकी पुस्तक 'दीपशिखा' चित्रमय काव्य पुस्तक है। आपकी कलाकृतियाँ हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं।

काव्य—नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत, यामा तथा दीपशिखा।

गद्य—अतीत के चल-चित्र, शृंखला की कड़ियाँ और स्मृति की रेखायें।

समालोचना—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य।

महादेवी से हिन्दी-साहित्य को बहुत बड़ी-बड़ी आशायें हैं।

प्रभात

चुभते ही तेरा अरुण बान!

बहते कन कन से फूट फूट, मधु के निर्झर से सजल गान!

इन कनक रश्मियों में अथाह,

लेता हिलोर तम-सिन्धु जाग;

बुद्बुद् से बह चलते अपार,

उसमें विहगों के मधुर राग;

बनती प्रवाल का मृदुल कूल, जो क्षितिज-रेख थी कुहर-म्लान!

जब कुन्द-कुसुम से मेघ-पुञ्ज,
बन गये इन्द्रधनुषी वितान ;
दे मृदु कलियों की चटक, ताल,
हिम-बिन्दु नचाती तरल प्राण ;
धो स्वर्ण प्रात में तिमिर गात, दुहराते अलि निशि-मूक तान !
सौरभ का फैला केश-जाल,
करतीं समीर परियाँ विहार ;
गीली केसर-मद झूम झूम,
पीते तितली के नव कुमार ;
मर्मर का मधु संगीत छेड़, देते हैं हिल पल्लव अजान !
फैला अपने मृदु स्वप्न-पंख,
उड़ गई नींद निशि क्षितिज-पार ;
अधखुले दृगों के कञ्जकोष—
पर छाया विस्मृति का खुमार ;
रँग रहा हृदय ले अश्रु हास, यह चतुर चितेरा सुधि-विहान !

उद्‌बोधन

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना
जाग तुझको दूर जाना !
अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले ;

आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जाग या विद्युत-शिखाओं में निठुर तूफ़ान बोले !
पर तुझे है नाशपथ पर चिन्ह अपने छोड़ आना !

बाँध लेंगे क्या तुझे ये मोम के बन्धन सजीले ?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रँगीले ?
विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले ?
तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना

वज्र का उर एक छोटे अश्रुकण में धो गलाया,
दे किसे जीवन-सुधा दो घूँट मदिरा माँग लाया ?
सो गई आंधी मलय की बात का उपधान ले क्या ?
विश्व का अभिशाप क्या चिर नींद बनकर पास आया ?
अमरता-सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना .

कह न ठण्डी साँस में अब भूल वह जलती कहानी,
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी;
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका !
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी !
है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना !

गीत

अलि कैसे उनको पाऊँ !

वे आँसू बनकर मेरे, इस कारण ढुल ढुल जाते,
इन पलकों के बन्धन में मैं बाँध बाँध पछताऊँ !

मेघों में विद्युत सी छवि, उनकी बनकर मिट जाती,
आँखों की चित्रपटी में जिसमें मैं आँक न पाऊँ ।

वे आभा बन खो जाते, शशि-किरणों की उलझन में,
जिसमें उनको कण कण में ढूँढ़ूँ पहचान न पाऊँ ।

सोते, सागर की धड़कन, बन लहरों की थपकी से,
अपनी यह करुण कहानी, जिसमें उनको न सुनाऊँ !

वे तारक-बालाओं की, अपलक चितवन बन आते,
जिसमें उनकी छाया भी मैं छू न सकूँ अकुलाऊँ ।

वे चुपके से मानस में आ छिपते उच्छ्वासें बन,
जिसमें उनको साँसों में, देखूँ पर रोक न पाऊँ ।

वे स्मृति बनकर मानस में खटका करते हैं निशि दिन,
उनकी इस निष्ठुरता को, जिसमें मैं भूल न जाऊँ ।

हरिवंशराय 'बच्चन'

जीवनवृत्त—['बच्चन' का जन्म २७ नवम्बर सम्वत् १९६४ में प्रयाग में हुआ। आजकल आप प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग में अध्यापक हैं।]

'बच्चन' का पूरा नाम बहुत कम लोग जानते हैं क्योंकि अपने घरेलू नाम बच्चन से ही ये साहित्य में प्रख्यात हैं। हिन्दी-काव्याकाश में बच्चन का उदय अपनी एक विशेष ज्योति का द्योतक है। बच्चन जीवन की घनीभूत विरोधी प्रवृत्तियों के सफल कवि हैं। गाँधी आन्दोलन की प्रगति में सहयोग देने की इच्छा से बच्चन ने अपनी पढ़ाई बी० ए० के पश्चात् स्थगित कर दी थी किन्तु पौराणिकता तथा शान्ति के आधार पर अग्रसर होने वाली भाव-धारा बच्चन के वश की न थी अस्तु ये उस आन्दोलन से विरक्त होकर क्रान्ति का पथ खोजने लगे। यद्यपि जीवन की सामाजिक तथा राजनीतिक कठोर-भूमि पर ये अपने उग्र विचारों का बीज वपन करने में समर्थ नहीं हुए पर साहित्य में ये नवीन भाव-धारा के अवश्य ही अग्रदूत हैं। आधुनिक हिन्दी-काव्य में यह कवि अपने जीवन के प्रति एकदम सच्चा है। आपबीती का काव्योचित वर्णन बच्चन की सबसे बड़ी विशेषता है। यौवन की मस्ती के साथ बच्चन ने 'मधुशाला' के द्वारा हिन्दी में प्रवेश किया था। उस समय इनके काव्य-विषय पर इतना विवाद चला जितना किसी अन्य कवि को लेकर कभी नहीं चला। काव्य में बच्चन की धुन सर्वथा प्रशंसनीय है, क्योंकि ये

जीवन की आशा-निराशा तथा मस्ती-उदासी के बीच में एक साहसी व्यक्ति की भाँति अपनी काव्य-धारा को सतत् प्रवाहशील रखने में सदैव समर्थ रहे हैं। नितान्त व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में बच्चन का कवि सबसे अधिक सफल है, इसमें सन्देह नहीं।

काव्य कृतियाँ—

तेरा हार, खैयाम की मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, निशा-निमंत्रण, एकान्त संगीत, आकुल अन्तर तथा विकल विश्व।

आपकी काव्य-रचना का क्रम जारी है किन्तु जीवन की व्यवस्था ने जैसे उनके काव्य की तीव्रता को कुछ कम सा कर दिया है। बच्चन का जीवन तथा साहित्य प्रयोगों से परिपूर्ण हैं। आशा है कि जीवन-व्यवस्था साहित्य के लिये एक वरदान सिद्ध होगी।

१

कोई पार नदी के गाता।

भंग निशा की नीरवता कर,

इस देहाती गाने का स्वर,

ककड़ी के खेतों से उठकर, आता जमुना पर लहराता।

कोई पार नदी के गाता।

होंगे भाई-बंधु निकट ही,

कभी सोचते होंगे यह भी,

इस तट पर भी बैठा कोई उसकी तानों से सुख पाता।

कोई पार नदी के गाता।

आज न जाने क्यों होता मन

सुनकर यह एकाकी गायन,

सदा इसे मैं सुनता रहता, सदा इसे यह गाता जाता।

कोई पार नदी के गाता!

२

अग्नि देश से आता हूँ मैं।

झुलस गया तन, झुलस गया मन,

झुलस गया कवि-कोमल जीवन,

किंतु अग्नि-वीणा पर अपने दग्ध कंठ से गाता हूँ मैं।

अग्नि देश से आता हूँ मैं।

स्वर्ण शुद्ध कर लाया जग में,

उसे लुटाता आया मग में,

दीनों का मैं वेश किए, पर दीन नहीं हूँ, दाता हूँ मैं।

अग्नि देश से आता हूँ मैं।

तुमने अपने कर फैलाए,

लेकिन देर बड़ी कर आए,

कंचन तो लुट चुका, पथिक, अब लूटो राख लुटाता हूँ मैं।

अग्नि देश से आता हूँ मैं।

३

गाता विश्व व्याकुल राग!

है स्वरों का मेल छूटा,

नाद उखड़ा ताल टूटा,
लो रुदन का कंठ फूटा,
सुप्त युग-युग वेदना सहसा पड़ी है जाग।
गाता विश्व व्याकुल राग!
वीणा के निज तार कसकर,
और अपना साध कर स्वर,
गान के हित आज तत्पर
तू हुआ था, किंतु अपना ध्येय गायक त्याग!
गाता विश्व व्याकुल राग!
उँगलियाँ तेरी रुकेंगी,
बज नहीं वीणा सकेगी,
राग निकलेगा न मुख से,
यत्न कर साँसें थकेंगी;
करुण क्रन्दन में जगत के आज ले निज भाग!
गाता विश्व व्याकुल राग!

४

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण।
लौट आया यदि वहाँ से, तो यहाँ नवयुग लगेगा,
नव प्रभाती गान सुनकर भाग्य जगती का जगेगा,
शुष्क जड़ता शीघ्र बदलेगी सरस चैतन्यता में;
यदि न पाया लौट, मुझको लाभ जीवन का मिलेगा,

पर पहुँच ही यदि न पाया व्यर्थ क्या प्रस्थान होगा ?
कर सकूँगा विश्व में फिर भी नए पथ का प्रदर्शन !

पोत अगणित इन तरंगों ने डुबाए मानता मैं,
पार भी पहुँचे बहुत से बात यह भी जानता मैं,
किंतु होता सत्य यदि यह भी सभी जलयान डूबे;
पार जाने की प्रतिज्ञा आज बरबस ठानता मैं,
डूबता मैं, किंतु उतराता सदा व्यक्तित्व मेरा,
हों युवक डूबे भले ही है कभी डूबा न यौवन !
तीर पर कैसे रुकूँ मैं
आज लहरों में निमंत्रण !

रामधारीसिंह 'दिनकर'

जीवनवृत्त—[बिहार के कवियों में 'दिनकर' अग्रगण्य हैं। सिद्धान्त से 'दिनकर' राष्ट्रवादी कवि हैं परन्तु जीवन में मधुबनी में सब रजिस्ट्रार के पद पर स्थित सरकारी नौकर हैं। जीवन और साहित्य का यह वैषम्य कुछ विचित्र सा है।]

ये बिहार प्रान्त की अनेक गौरवमयी अतीत स्मृतियों के सफल गायक हैं। इनकी कविता में माधुर्य तथा ओज का आकर्षण है। जीवन की अन्तर्वेदना का 'रेणुका' में बहुत सफल चित्रण हुआ है। युग की माँग के अनुसार दिनकर ने समाजवादी विचार-धारा को भी इधर अपनाया है। जीवन के विषाद तथा अह्लाद के क्षणों का ये अपने काव्य में बराबर समन्वय करते चलते हैं। 'हुंकार' देश-प्रेम की ममता और सामूहिक चेतना की प्रबलता से ओत-प्रोत है। 'रसवन्ती' में यौवन का शृंगार तथा रूप की प्यास और जीवन का सौन्दर्य देखने की आकुल आकांक्षा से कवि विकल-विह्वल सा दीखता है। काव्य-धारा की यह परिवर्तित प्रणाली कवि के संसार के साथ होने की साक्षी है। अभी तक इनकी काव्य-यात्रा का चरम लक्ष्य निश्चित सा नहीं ज्ञात होता, क्योंकि उसमें सभी तरह की भावनाओं का निदर्शन मिलता है। दिनकर में काव्य-प्रतिभा है और उसकी अभिव्यक्ति का साधन भी वे जानते हैं किन्तु सम्भवतः उनमें साहित्यिक साधना की कमी है। संसार की द्रुत-गति के साथ-साथ कवि को अपनी स्वर-साधना का एक उद्देश्य भी रखना आवश्यक है। जो भी हो हिन्दी काव्य की प्रगति में दिनकर

सत्र के साथ हैं, इसे स्वीकार करना पड़ेगा।

रेणुका, हुंकार और रसवन्ती उनकी काव्य-कृतियाँ हैं।

मनुष्य

कैसी रचना कैसा विधान ?

हम निखिल सृष्टि के रत्न मुकुट,
हम चित्रकार के रुचिर चित्र,
विधि के सुन्दरतम स्वप्न, कला
की चरम सृष्टि, भावुक पवित्र;

हम कोमल, कान्त प्रकृति-कुमार,
हम मानव हम शोभा निधान,
जाने किस्मत में लिखा हाय
विधि ने क्यों दुख का उपाख्यान ?
कैसी रचना कैसा विधान

कलियों को ही मुस्कान मधुर
कुसुमों को आजीवन सुहास,
नदियों को केवल इठलाना
निर्झर को कम्पित स्वर-विलास,

वन-मृग को शैलतटी-विचरण
खग-कुल को कूजन मधुर तान

सब हँसी खुशी बँट गई
रुदन ही पड़ा हमारे भाग्य आन !
कैसी रचना कैसा विधान ?

खग, मृग आनन्द विहार करें
तृण-तृण झूमे सुख में विभोर,
हम सुख-वंचित चिन्तित उदास
क्यों निशि-वासर श्रम करें घोर ?

अविराम कार्य, नित चित्त-क्रान्ति
चिंता का गुरु अविराम भार,
दुर्वह मानवता हुई—कौन—
कर सकता मुक्त हमें उदार !

चारों दिशि ज्वाला सिन्धु घिरा
धू - धू करतीं लपटें विशाल,
बन्दी हम व्याकुल तड़प रहे
जाने किस प्रभुवर को पुकार !

मानवता की दुर्गति देखे
कोई सुन ले यह आर्त्तनाद,
कोई कह दे क्यों आन पड़ा
हम पर ही यह सारा विषाद !

उपचार कौन रे क्या निदान ?
कैसी रचना कैसा विधान ?

गा रही कविता युगों —

गा रही कविता युगों से मुग्ध हो
मधुर गीतों का न पर, अवसान है,
चाँदनी की शेष क्यों होगी सुधा
फूल की रुकती न जब मुसकान है।

चन्द्रमा किस सुन्दरी की है हँसी
दूब यह किसका अनन्त दुकूल है,
किस परी के प्रेम की मधु कल्पना
व्योम में नक्षत्र, वन में फूल है?

नव गगन कर में कुसुम-जयमाल ले
भाल में सौन्दर्य की बेंदी दिये,
क्षितिज पर आकर खड़ी होती उषा
नित्य किस सौभाग्यशाली के लिये?

[illegible] की थी चन्द्रकांत [illegible]
आज है उन्मादिनी कविता परी.
[illegible] तितली बनी वह फूल पर
[illegible] भूल कहाँ [illegible]!

निर्झरिणी

एक दिन अधीर हुई थी [illegible]
[illegible] में [illegible] हुई।

रामधारीसिंह 'दिनकर'

वन-वल्लरी-अंचल बीच कहीं
तृण-पुंज में वेश छिपाती हुई !
निकली द्रुम-कुंज की छाँह से तो
मैं चली फिर से घहराती हुई !
सिकता-से पिपासित विश्व के कंठ में
स्वर्ग - सुधा सरसाती हुई !

टिप्पणियाँ

कबीर

आतम मारि=आत्म हनन करके, आत्मा को नष्ट करके। पीर औलिया—गुरु, पंडित। मुरीद=शिष्य। डिंभ=अभिमान, गर्व। साखी शब्दहि=उपदेशप्रद और ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी पद। सिख्य=शिष्य। मिहर=कृपा। दर्दबंद=विकल। दीदार=दर्शन। निमिख=क्षण। अजर=निरंतर। अलख=अलक्ष्य, जो दिखाई न पड़े। जुगन=युग। तृखा=प्यास। करम, भरम, अघ=कर्म, भ्रान्ति और पाप। पारस=एक तरह का पत्थर जिसको छूकर लोहा सोना बन जाता है। संचय=एकत्रित करना। बिलम्बिये=ठहरना। गहर=बड़े बड़े। मधूकरी=भिक्षा। रबाब=तार का बाजा। मनका=दाना, गुरिया। कथनी=कहना। लोय=लोई। परलै=प्रलय।

जायसी

बगमेल=घोड़ों का बाग से बाग मिलाकर धावा। सेल=भाला। अधर धर मारैं=कबंध (धड़) अधर में वार करता है। निरारै=यहाँ से वहाँ तक। राते=लाल। खुरखेट=खुरों से उड़ी हुई धूल। निदरे=समाप्त। भारत=घोर युद्ध। ठट्ठ=समूह। बिदारैं=छिन्न भिन्न करना। करवारू=तलवार। चाँचरि=होली। धूका=गिरा, झुका। भभूका=अंगारे सा लाल। पदारथ=पदार्थ (पद्मावती)। सीउ=शीत।

ओनंत=झुक गई। निहोर=काम आना। सेराव=शीतल करना। परास=पलाश का वृक्ष। किंगरी=बाजा। ससि सूरू=चन्द्रमा, सूर्य। बाजि रथ=घोड़े और रथ। पौरी=ड्योढ़ी। पाजी=सिपाही। सुभौंरी=चक्कर लगाना। गाजहिं=गरजना। जीहा=जीभ। कुञ्जर=हाथी। गुंजरिलीहा=गरज कर लिया। घरियारा=घंटा, घड़ियाल। घरियारी=घंटा बजाने वाला। डाड़ा=डांटा। निचिंत=निश्चिंत। भाड़ा=वर्तन। भरी=पूर्ण हुई। आऊ=आयु। बटाऊ=पथिक। रहँट-घरी=रहँट का घड़ा। ढरी=खाली हो गई।

सूरदास

नवनीत=मक्खन। रेनु=धूल। चारु=सुन्दर। लोल=चंचल। मधुपगन=भौंरे। वज्र-केहरि-नख=वज्र नाम का दीठ से बचाने वाला पत्थर और सिंह का नाखून। अरबराय=जल्दी से। अन्हावत=स्नान कराना। ओंछत=बाल काढ़ना। काचो=कच्चा। जोटी=जोड़ी। नागर=चतुर। अंबुनिधि=समुद्र। मकराकृत=मछली के आकार का। भुजंग=बड़ा सर्प। मुकुत=मोती। सुरसरी=गंगा जी। मनिगन=रत्नों का समूह। वारिध=समुद्र। राका=पूर्णिमा। श्री=लक्ष्मी। अवधि=आने का समय। द्रुम=पेड़। बल्ली=लता। दादुर=मेढक। निविड़=घोर, घने। अछत=होते हुये। करम करम=धीरे धीरे। अलक लड़ैतो=इकलौता और दुलारा। पनहि=प्रण। वधिक=कसाई। नार=नाला। पन=प्रण।

तुलसीदास

गहौंगो = ग्रहण करूँगा। परत = अवसर पर। परुष = कठोर। बिगत मान = अभिमान रहित। परिहरि = छोड़कर। अविचल = स्थिर। दुति = कान्ति। सरोरुह = कमल। कंज = कमल। भूरि = अधिक। अनंग = कामदेव। सहरी = सफरी, एक प्रकार की मछली। वित्तहीन = दरिद्र। घरनी = पत्नी (अहल्या जो शाप से शिला हो गई थी और राम के चरण का स्पर्श पाकर फिर नारी बन गई।) तरनी = नाव। वाद = विवाद। वालधी = पूँछ। रसना = जीभ। व्योम-वीथिका = आकाश-गंगा। धूमकेतु = पुच्छलतारा। तरवारि = तलवार। सुरेश-चाप = इन्द्रधनुष। दामिनी-कलाप = बिजलियों का समूह। कृसानु-सरि = आग की नदी। जातुधान = राक्षस। प्रजारी = जलाना। सींव = सीमा। जलजात = कमल। काकपक्ष = जुलफें। कच = बाल। चिबुक = ठुड्डी। काम = कामदेव। कंबु = शंख। कलभ = हाथी का बच्चा। कर = सूँड़। सींवा = सीमा। सुठि लोना = सुन्दर, सलोना। केहरि कटि = सिंह के समान कमर। अपान = अपनापन। दारुन = कठिन अत्यधिक। बाम = प्रतिकूल। उभय = दोनों। गति साँप छछूंदर केरी = जब साँप छछूंदर को पकड़ लेता है तब यदि वह उसे उगल दे तो अन्धा हो जाता है और यदि निगल जाय तो कोढ़ी। बय = अवस्था। हहरात = हृदय विकल होना। लकुट = लाठी। बरजोरा = प्रबल। नाहिं छुटत बनई = न छोड़ते बनता है। चंग = पतंग। खेलार = खेलाड़ी। दुरा = छिपा। जल्पति = बकवाद करना। विपुल = बहुत अधिक।

मीरा

अलक = लट । सरवर = तालाब । मकर = मगर । भृकुटि = भौं । टौना = जादू । मृगछौना = हरिण का बच्चा । सुग्रीव = सुन्दर गर्दन । विशेषा = विशेष । अधर = ओंठ । बिम्ब = कुँदरू । अरुन = लाल । दसन = दाँत । दाडिम = अनार । दूखण = दर्द करना । वह गई करवत ऐन = हृदय पर आरी चल गई । मग = रास्ता । जोवत = प्रतीक्षा करना, देखना । सुखदेण = सुख देने वाले । सिगरी = सारी । बिहानी = बीत गई । अन्दर वेदन = भीतरी व्यथा । चातक = पपीहा । घनकूँ = बादल को । जिण लाई होय = जिसके चोट लगी हो । सोवण = सोना । मानुसा = मनुष्य का । बिरछ = वृक्ष । ओखी = उसकी । बेड़ा = नाव । ज्ञान चौसर = ज्ञान का चौपर, चौपर एक खेल है जो पाँसा डालकर खेला जाता है । मँड़ी = बिछाई । सुरत = ध्यान । पासा सार = पासा खेलना । खुमारी = नशा । मेहड़ा = बादल । दामिणी = बिजली । भरम-किंवारी = भ्रम का किवार । सुन्नि मंडल = ब्रह्माण्ड का वह स्थान जहाँ आत्मा का परमात्मा से मिलन होता है । पौढ़े = सोये हैं । पाँच-पचीसूँ = पंच महाभूत और उनकी पचीस प्रकृतियाँ । दुंद = द्वन्द्व । दीसे = दीखना । जाऊँ = जलाऊँ । अगम अटारी = वह स्थान जो दुर्गम है, शून्य-मंडल । अमरित = मृत्यु रहित ।

नरोत्तमदास

धाम = घर । गहे = पालन करते हुए । हठती = कष्ट उठाती । मीत = मित्र । पेलि = आग्रह के साथ । पन = शास्त्रीय विधान से मनुष्य

की आयु के पच्चीस पच्चीस वर्ष के चार भाग किये गये हैं, प्रत्येक अंश का नाम पन है। विरधापन=वृद्धावस्था। कनावड़ो=अहसानमन्द। बूट=हरा चना। झगा=झँगा, कुरता। लटी दुपटी=पुराना दुपट्टा। उपानह=जूता। सामा=सामान। अभिरामा=सुन्दर। जोये=देखे। बानि=आदत। तंदुल=चावल। गोपि=छिपाकर। पोट=पोटली। अछोट=बड़ी। कँथारी=कथरी। पावौ=चारपाई के पावे। बाटकी=कटोरी। माटकी=मटकी।

विहारीलाल

ससिसेखर=महादेव। अकस=ईर्ष्या से। समर=कामदेव। आतप=धूप। नग=रत्न। वढ़ाये=बुझाये। सरि=समानता। चंपकु=चंपे का फूल। जातु रूप=सोना। अच्छु=अच्छी। पायन्दाज=जिससे पैर पोंछे जाते हैं। गैल=रास्ता। चषनु=आँखें। वरनीन=पलकों के रोम। जीगनन=जुगनू। धुरवा=बादल। कोद=ओर। पयोद=बादल। बिहूनियो=विहीन होने पर भी। दृगनु=आँखें। अनाकिनी=आनाकानी। वारक=एक बार। वारन=हाथी। तूठे-तूठे=फूले फूले। सरे=निकले। काँचैं=कच्चा। राँचैं=प्रसन्न होता है। द्यौसु=दिन। अरुन=लाल। आय=आकर।

भूषण

आनन=मुख। पुनीत=पवित्र। सरजै=शिवाजी। चतुरंग=सेना। बिहद=वेहद। गब्बरन=हाथी। ऐल=बाढ़। खैल भैल=खलबली। खलक=संसार। उलसत है=उछलता है। तरनि=सूर्य।

थारा = थाल। पारावार = समुद्र। बाने = निशान। कुम्भ = माथा। कुंजर = हाथी। मन्दर = मकान, प्रासाद और पर्वत। कन्दमूल = भोजन विशेष और फलफूल। भूषन = भूख और गहना। बिजन = पंखा और जंगल। नगन = नग और नंगी। मयूख = किरण। तमतोम = अंधकार का समूह। छितिपाल = पृथ्वी का पालन करने वाला। करवाल = तलवार। प्रतिभट = शत्रु। भुजगेश = शेषनाग। परछीने = पंखहीन। बरछीने = बल छीन लिया है।

शेख

वारीयै = वार, अवकाश। गरिहाइनु = गाली देने वालियों की। पसुन = पशु। झारन = झाड़ियाँ। डारिहैं = बिछौना बिछायेंगे। करेर = कठिन। कोंवरे = कोमल। सहेठ = साथियों के। नटसाल = नृत्यशाला। बिरधौ = विरुद्ध मत हो। रुधौ = रोकना। बेह = छेद। बीरपाई = बल, अन्याय। परवेस = प्रवेश। हटक = रोक। हँकार = चिंघाड़।

सहजोबाई

निरतत = नाचता है। बिथुराई = बिखरी हुई। मुक्काहल = मोती। दातार = दाता। गंजन = नाश करना। बुधि उजियार = बुद्धि का उजाला। सरूपमई = स्वरूपमय अर्थात् ज्ञानमय। अधिको नाम = नाम का महत्व अधिक है।

हरिश्चन्द्र

तरनि तनूजा = सूर्य की लड़की अर्थात् यमुना। मुकुरने = दर्पण में अर्थात् यमुनाजल में। प्रनवत = प्रणाम करते हैं। आतप वारन =

धूप दूर करने के लिये। नय रहे = झुक रहे। मज्जत = स्नान करते हैं। पारावत = कबूतर। कारन्डव = जल पक्षी। चक्रवाक = चकवा। वक = बगुला। शुकपिक = तोता और कोयल। रोर = शब्द। वालुका = बालू। रजत सीढ़ = चाँदी की सीढ़ी। कौस्तुभ = एक प्रकार का मणि जिसे विष्णु अपने हृदय में धारण करते हैं। गुंजा = घुँघची। पखौश्रा = पंख। टेटिन = जंगली फल। रीझ = प्रसन्नता। अलक = बाल। हलकंत = हिलता हुआ। चक्रादिकन = चक्र आदि। परिकर = कमर कसकर। जुगश्रो = यत्न से रखो। विकीरन = फैलाते हुये। सिहात = प्रसन्न। निद्रालस = नींद की आलस। सीरे = ठंडे। मुदित = प्रसन्न। धुनि सौरभ = ध्वनि और सुगंध। अकलहत = बुद्धिहीन। रुख = इच्छा।

श्रीधर पाठक

अम्बु = पानी। वारति = निछावर करती है। मौलि = सिर। अवलि = पंक्ति। स्रवत = बहना। सितधार = सफेद धार। अवनि = पृथ्वी। तुहिन सिखर = बर्फ की चोटी। सेली = पगड़ी। चन्दन धौरि = सफेद चन्दन। गौरि गुरु = हिमायल। रच्छन = रक्षा के लिये। नैसर्ग = प्रकृति। निखिल = सम्पूर्ण। धाता = ब्रह्मा। रवि-हय = सूर्य का घोड़ा। दौनी = पत्थर की प्याली। ओक = घर। पुरन्दर = इन्द्र। शुचि = पवित्र। सुमञ्जु = सुन्दर। प्रवीनता = होशियारी। अलक्ष्य = जो दिखाई न पड़े। किंकरी = दासी। भोगमुक्ता = भोग से रहित। प्रकोपन = क्रोध। दाक्षिण्य = उदारता। थानक = डेरा।

अयोध्यासिंह उपाध्याय

अवसान = अन्त। लोहित = लाल। कमलिनी-कुलवल्लभ = सूर्य। विहंगम-वृन्द = पक्षियों का समूह। समुत्थित = उठा, गूंजा। अनुरंजित = रंग गई। पादप-पुञ्ज = वृक्ष-समूह। अरुणिमा = लाली। विनिमज्जित = डूब गई। अचल-शृंग-समुन्नत = पहाड़ की ऊँची चोटी। अनमनी = वेमन। लौं = तरह। नव-नलिनी = नई कमलिनी। कुअंकों = अशुभ गोदों की। कीलती = शक्ति क्षीण करती थी। किशलय = कोपल, नवीन पत्तियाँ। अम्भोज = कमल। करतल-गत = हाथ में आ जाना। कल = सुन्दर। सारिका = मैना।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

अंसहू = अंश मात्र भी। कनूका = कण। तिनूका = तृण। विलोकन = देखने में। खटिहै = ठहरेगी। तून-तूल = तून के समान भी। वेनु = वंशी। बराइहै = दूर करेंगे। त्रिपुरारि = शंकर जी। ढारि = ढुलका दिया। विपुल = बहुत। वलित = युक्त, सहित। विहंडति = फाड़ती हुई। भरके = भड़के। हरके = शंकर जी के। धराधर = शेषनाग। जाननि = रथ। कौतुक = तमाशा। बंक = टेढ़े। कावा = चक्कर काटती हुई।

मैथिलीशरण

लटपट = लड़खड़ाती हुई। अवलम्ब = सहारा। अधर-दशन = ओठ दांत। साध्य = जिसके लिये साधना की जाय। अहर्निश = रात-

दिन। आराध्य = जिसकी उपसना की जाय। अबाध्य = बाधा रहित। अनुराग = प्रेम। सुधा = अमृत। क्षुधा = भूख। नीलाम्बर = नीला आकाश। परिधान = कपड़े। मेखला = करधनी। रत्नाकर = समुद्र। पयोद = बादल। सर्वेश = परमात्मा। तम = अंधकार।

माखनलाल चतुर्वेदी

सौगात = भेंट। मासूम = नादान बच्चे।

रामनरेश त्रिपाठी

निर्झर तनया = नदी। भाराविन्त = भार से दबा हुआ। कोकनद = लाल कमल। नीरद = बादल। भूतल = पृथ्वी। विशद = बड़ा। सविता = सूर्य। आनन = मुख। वतन = जन्मभूमि। माशूक = प्रेम-पात्र। अंजुमन में = महफिल में। विरक्त = उदासीन। अनित्यता = क्षणभंगुरता।

जयशङ्कर 'प्रसाद'

हिमकन = ओस की बूँदें। अरुणांचल = लाल आंचल। दूरागत = दूर से आती हुई। उत्कंठा = चाह। रज-धूसर = धूल से लिपटा। मूर्त = प्रत्यक्ष। सचराचर = चर-अचर। चिति = चेतना, ज्ञान। सुख-संसृति = सुख का संसार। द्वयता = दो का भाव, अपना पराया का भाव। निर्विकार = विकार रहित। नीड़ = घोंसला, घर।

गोपालशरण सिंह

मोद = आनन्द। उपमान = वह वस्तु जिससे तुलना की जाय। प्रभाली = आभा, प्रभा का समूह। कमनीय = सुन्दर। क्षण ज्योति =

बिजली। करुणावतार=करुणा के अवतार। वनस्थली=वन की भूमि। समीरण=हवा। लोल-लोल=चंचल। भानुकरों=सूर्य की किरणों। कारागृह=जेल। सदन। घर।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

भस्मसात=जल जाना। भूधर=पहाड़। पय=दूध। गतानुगति=प्राचीन परम्परा। विगलित=नष्ट होना। अंतरिक्ष=आकाश। महारुद्र=प्रलयकाल के शंकर। प्रांगण=आँगन। प्रलयंकरी=प्रलय कर देने वाली। मिजरावें=वीणा बजाने का तार। रुद्ध=रुका हुआ। फणि=साँप। चिंतामणि=एक प्रकार की मणि जो साँप में होती है। परिचालन=चलाने में। पेखो=देखो। राज़=रहस्य। क्रुद्ध तान=क्रोध से भरी तान।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

दिवसावसान=दिन का अन्त। मेघमय=बादलों के सहित। तिमिरांचल=अंधकार का आँचल। हास-विलास=हँसी-खेल। अभिषेक=स्वागत, तिलक। अम्बर=आकाश। ताण्डव=एक प्रकार का नृत्य। कुसुमित=फूले हुए फूलों वाला। नीरव=बिना शब्द के। स्वच्छन्द=मनमाना। मधुकर=भँवर। रसावेश=रस का आवेश। पुलिन=किनारा। त्रस्त=डरी हुई। अपार=बहुत बड़ा। मुक्ताएँ=मोती। हास-रंग-रस=आनन्द, रंग और रस। अनल-शिखा=आग की ज्वाला। जीर्ण=पुराना। अरूप=रूपहीन, व्यापक शक्ति। विभा=प्रकाश।

सुमित्रानन्दन पंत

अतुल=जिसकी तुलना न हो। अभिनव=नवीन। पिञ्जर= पिंजड़ा अकलंक=कलंकहीन। वत्स=शिशु। वृन्त=डंठल। तरुण=युवा। शिराओं=रक्तवाहिनी नसें। आशाऽकांक्षा=आशा और इच्छा। विधुर=वियोगी। अविराम=लगातार। दिशावधि=देश और काल। मृन्मय=मिट्टी के। मुकुल=कली।

सुभद्राकुमारी चौहान

उदधि=समुद्र। वधु=दुलहन। कंत=पति। कृपाण=तलवार। दलित-त्राण=दुखियों की रक्षा। दुरंत=कठिन। विधान=तैयारी। निर्भय=निडर। द्रुत=जल्दी। दमक=चमक। प्राकृत=स्वाभाविक। विश्रांति=शान्ति। कौतूहल=जिज्ञासा। आह्लाद=प्रसन्नता।

रामकुमार वर्मा

व्यथित=पीड़ित। निर्मित=बनाकर। राकाशशि=पूर्णमासी का चन्द्रमा। रश्मिमाल=किरणों की माला। उर्मि=तरंग। पीन= मोटे। अधःपतन=नीचे गिरना। अविदित=अपरिचित। कातर= विकल।

महादेवी वर्मा

अरुण बान=उषाकालीन किरणें। कनक-रश्मियों=सुनहली किरण। तम-सिन्धु=अन्धकार का समुद्र। प्रवाल=मूँगा। कुहर-म्लान =कुहरे से धूमिल। कुन्द-कुसुम=कुन्द के फूल। मेघ-पुञ्ज=बादलों का समूह। वितान=शामियाना। हिम-बिन्दु=ओस की बूँद। तिमिर=

अंधकार। निशि-मूक-तान = वह तान जो रात में मूक थी। सौरभ = सुगंध। समीर = हवा। केसर-मद = केसर का मधु। कञ्जकोष = कमल का भीतरी भाग। व्योम = आकाश। विद्युत-शिखाओं = बिजली की रेखाओं। उपधान = तकिया। अंगार-शय्या = आग की सेज। चित्रपटी = चित्र बनाने का फलक। आभा = दीप्ति।

हरिवंशराय 'बच्चन'

भंग = तोड़कर, नष्टकर। एकाकी = एकान्त। दग्ध-कंठ = जले हुए गले से। ध्येय = उद्देश्य। जगती = संसार। शुष्क = सूखी, नीरस। चैतन्यता = चेतनता। प्रस्थान = जाना। पोत = नाव। जलयान = जहाज।

रामधारीसिंह 'दिनकर'

चरम-सृष्टि = उत्कृष्ट सृजन। निधान = कोष। उपाख्यान = कथा। शैलतटी = पर्वत की तराई। विभोर = मग्न। वासर = दिन। चित्त-क्लान्ति = चित्त की थकावट। दुर्वह = कठिनाई से ढोया जा सकनेवाला। आर्त्तनाद = करुण-क्रन्दन। उपचार = उपाय। निदान = रोग की पहचान। दुकूल = वस्त्र, चीर, ओढ़नी। कौमार्य = कुमारीपन। चन्द्र धौत = चाँदनी से धुली हुई। उन्मादिनी = मस्त। दूर्वा = दूब। वल्लरी = लता। द्रुम = पेड़। सिकता = बालू। पिपासित = प्यासे। सुधा = अमृत।